निर्मल सम्प्रदाय
(निर्मल संत–परम्परा : उद्‌भव, विकास और देन)

डॉ. मदन गुलाटी
एम.ए. (हिन्दी एवं अंग्रेज़ी), पी–एच.डी.
पूर्व वरिष्ठ प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी–विभाग
दयाल सिंह कॉलेज, करनाल–132001 (हरियाणा)

इन्टैक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
करनाल

मुद्रक एंव प्रकाशक : इन्टैक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
इन्टैक एससीओ 353, भूमितल,
मुगल कैनाल, करनाल–132001
फोन न. : 0184-3292951, 4043541
E-mail : jobs.ipp@gmail.com

© सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

मुल्य : ₹100/–

प्रथम संस्करण 2011 ई०

पूज्य दादा
संत भगत सिंह जी महाराज

“ये
तुम्हारे नाम की दो बत्तियाँ हैं
धूप की
डोरियाँ दो गंध की”

दो शब्द

वैदिक विचार अत्यंत प्राचीन है और उसका विकास बराबर होता रहा है। यह विकास कहीं गुप्त, कहीं प्रकट, कभी मंद और कभी तेज़ होता रहा। एक सरिता के समान मध्य युग में आचार्य के बाद आचार्य हुए और उन्होंने सदियों तक भारत का समूचा वैचारिक वातावरण अपने भाष्यों से सुगंधित कर डाला। उसके बाद अनेक टीकाकार हुए और उन्होंने भी उस विचारधारा का पोषण किया। टीकाकारों के बाद संत आये और उन्होंने देवभाषा की जंगल–घाटी में फंसे इस वैदिक प्रवाह को लोक भाषा के मार्ग से मुक्त किया और उसे जन पदों तक पहुंचा दिया, वैसे ही जैसे कि भगीरथ ने शिवालक में फँसे गंगा–प्रवाह को जन पदों के लिये मुक्त किया था।

इस वैदिक विचार–प्रवाह को जीवंत बनाए रखने में जिन संतों–महात्माओं ने सहयोग दिया है, उसमें एक नाम – निर्मल सम्प्रदाय का भी है। अध्ययन, अध्यापन और भारतीय दर्शन के साथ इस सम्प्रदाय का बड़ा ही निकट का सम्बन्ध रहा है। भारतीय दर्शनों 'में' सांख्य, वेदांत, और चिकित्सा शास्त्र में ये लोग विशेष प्रवीण थे। गुरुमत का प्रचार–प्रसार तो इनका ध्येय ही है।

निर्मल सम्प्रदाय के संतों का महत्त्व गुरुमत के प्रचार–प्रसार के कारण तो है ही, साहित्य सृजन में भी वे पीछे नहीं रहे। निर्मल संतों ने संस्कृत, हिन्दी और पंजाबी तीनों भाषाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। वैदिक, दार्शनिक एवं गुरुमत सम्बन्धी प्रचुर साहित्य का सृजन इन्होंने किया।

लेकिन एक विशेषता जो विशेष रूप से उनके प्रति आकृष्ट करती है वह है कि उनकी कथनी, रहनी और करनी में भेद नहीं है। इसलिए उनके विचार, उच्चार और आचार का अवलोकन और अध्ययन हम सब के लिए सदैव हितकर होगा। वस्तुतः निर्मल संत अपने मन, वचन और कर्म की एकरूपता के कारण ही निर्मले संत कहलाये।

इस छोटी सी पुस्तक में निर्मल सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव, विधिवत् प्रवर्तन, समय समय पर दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा दिये गये आशीर्वाद, साहित्य–सृजन में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान एवं उनपर पड़े अद्वैत–वेदांत के प्रभाव एवं गुरुवाणी की व्याख्या–प्रणाली की संक्षेप में चर्चा की गई है।

एक बात और – मानव कल्याण के महान् उद्देश्य को सामने रखकर देश के विभिन्न भागों में निर्मल डेरों की स्थापना हुई। आज भी ये डेरे आधुनिक चकाचौंध और राजनीति से दूर रहकर उन्हीं पावन उद्देश्यों के प्रचार–प्रसार में संलग्न हैं। इनकी लगभग 33–34 शाखायें हैं। जैसे डेरा संत बाबा भाग सिंह, निर्मल आश्रम मुरादाबाद, पंचायती अखाड़ा कनखल (हरिद्वार) विशेषतः संत बलबीर सिंह जी सीचेवाल आदि अनेकों डेरे अपना योगदान दे रहे हैं।

इन डेरों में एक डेरा है 'निर्मल आश्रम ऋषिकेश'। क्योंकि मैं बचपन से इस आश्रम से जुड़ा रहा हूँ अतः इस पुस्तक में इस आश्रम पर एक स्वतंत्र अध्याय जोड़ा गया है और आश्रम की कुछ विशिष्ट विभूतियों की चर्चा भी की गई है।

मुझे इस नवनीत के आस्वादन का सुअवसर मिला, यह मेरा सौभाग्य।

श्रीमती योगिता लाठर (संत निक्का सिंह पब्लिक स्कूल) ने अपनी व्यस्तता में से समय निकाल कर प्रूफ़ देखने का जो कष्ट किया है उसके लिए मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

मदन गुलाटी

1329 सेक्टर–13
अर्बन एस्टेट
करनाल (हरियाणा)
फोन -0184-2201407

अनुक्रम

1.	नानक निर्मल पन्थ चलाया	**5**
2.	निर्मल सम्प्रदाय–उद्‌भव और विकास	**8**
3.	दस आशीर्वाद	**17**
4.	निर्मल संत साहित्य	**23**
5.	प्रमुख निर्मल संत साहित्यकार	**27**
6.	संत गुलाब सिंह निर्मल कृत 'अध्यात्म–रामायण'	**35**
7.	गुरुमत और निर्मल सम्प्रदाय	**49**
8.	निर्मले संतों पर अद्वैत वेदांत का प्रभाव	**67**
9.	गुरुवाणी–व्याख्या की निर्मल प्रणाली	**76**
10.	निर्मल सम्प्रदाय की देन	**79**
	(निर्मल आश्रम ऋषिकेश के संदर्भ में)	**79**
11.	निर्मल आश्रम की शाखायें	**88**
12.	निर्मल आश्रम की विभूतियाँ	**93**
	(i) संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज	**93**
	(ii) संत बाबा भगत सिंह जी महाराज	**96**
	(iii) संत बाबा गोपाल सिंह जी महाराज	**101**
	(iv) मंहत बाबा राम सिंह जी महाराज	**103**
	(v) संत बाबा जोध सिंह जी महाराज	**106**
13.	निष्कर्ष	**108**

नानक निर्मल पन्थ चलाया

'निर्मल सम्प्रदाय' पर लिखना ठीक वैसा ही है जैसा कि किसी तीर्थ स्थान पर जाना। जिस प्रकार किसी तीर्थ स्थान पर जा कर हमारा मन पवित्रता से ओत प्रोत हो जाता है कुछ ऐसी ही अनुभूति निर्मल सम्प्रदाय पर लिखने से होती है।

निर्मल सम्प्रदाय में आया 'निर्मल' शब्द का अर्थ हैं–पावन, पवित्र अथवा मल–रहित। निर्मल इतिहासकार महंत गणेशा सिहं जी ने 'निर्मल' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है–

निर्विशेष उपद्रवेण रहिता सर्वहितकारी परमोपदेश वक्ता निर्मला इति शुद्वा।

'सम्प्रदाय' शब्द का अर्थ है–'धरोहर'। एक विचार को स्वीकार करते हुए उसे आगे बढ़ाने वाले विद्वान एक सम्प्रदाय के विद्वान कहलाते हैं। गुरु–शिष्य परम्परा अथवा विचार की धरोहर को मथकर चमकाने वाले लोग एक सम्प्रदाय के लोग कहलाते हैं। इस तरह सम्प्रदाय के मायने हैं School of Thought। भारतीय काव्यशास्त्र में विकसित होने वाले सम्प्रदाय इस बात का प्रमाण हैं।

निर्मल इतिहासकार इस सम्प्रदाय का आरम्भ श्री गुरु नानक देव जी से मानते हैं। अतः हमें सबसे पहले उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

शरीर रूप में श्री गुरु नानक देव जी ने ७० वर्ष ५ महीनें तथा ७ दिन इस पृथ्वी पर भ्रमण किया। उनका जन्म सन् १४६९ के १५ अप्रैल को एक बेदी क्षत्रिय परिवार में लाहौर से ६५ किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में तलवंडी नामक स्थान पर हुआ जो आज ननकाना साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। गुरुनानक देव जी के पिता एक ग्राम पटवारी, मेहता कालूचंद थे। श्री गुरुनानक देव जी ने एक ब्राह्मण शिक्षक से हिसाब तथा बहीखाते का काम लंडे महाजनी में सीखा तथा एक मौलवी से अरबी सीखी। शिष्य गुरुनानक की असाधारण प्रतिभा से उसके अध्यापक भी आश्चर्य चकित थे। विद्याध्ययन से विरत होकर गुरुनानक देव जी तत्त्व चिन्तन और सत्संग

में अपना समय व्यतीत करने लगे। इनकी विरक्ति भावना से चिन्तित होकर पिता ने इन्हें खेती, वाणिज्य, नौकरी आदि व्यवसायों में लगाने के लिये गुरुनानक देव जी का कम उम्र में ब्याह कर दिया और उन्हें दो पुत्र हुए–श्रीचन्द तथा लखमी चन्द। नानक ने सुल्तानपुर में गवर्नर दौलत खां के मोदीखाने में भी काम किया। यहां वे अपनी आय का अधिकांश भाग निर्धनों में बाँट देते थे और भजन एवं मनन में समय व्यतीत करते थे। यहीं रबाबी मरदाना भी इनसे आ कर मिल गया जो आजीवन इनके साथ रहा। नानक पद गाते थे और मरदाना रबाब बजाता था।

गुरुनानक देव जी के जीवन को तीन भागों में बाँट सकते हैं।

1. १४६९–१४९६ अर्थात् २७ वर्षों का गार्हस्थ्य जीवन अथवा आत्मबोध और ज्ञान का काल।

2. १४९७ से १५२१ अर्थात् २५ वर्षों का पर्यटन काल अथवा दूसरे धर्मों का अध्ययन तथा अपने विचारों की व्याख्या का काल।

3. १५२२–१५३९ अर्थात् १८ वर्षों तक रावी किनारे करतार पुर में अवकाश का जीवन काल।

यहाँ उन्होंने अपने परिवार तथा अपने भक्त शिष्यों के साथ जीवन के आखिरी १८ साल व्यतीत किये। अपनी जमीन जोत कर वे जीवन यापन करते, किन्तु काफी समय प्रार्थना और उपदेशों में बिताते थे। पास पड़ोस के गाँवों के सभी जातियों और धर्मों के लोग गुरु के भजनों को सुनने के लिए आते। इस तरह की संगत नये समाज का एक नियमित अंग बन गई। लंगर भी नियमित रूप से चलता।

अपने आरम्भिक काल में अन्य लोगों की भाँति श्री गुरु नानक देव जी पास की नदी में प्रातःकाल स्नान के लिए जाते, और किनारे बैठ प्रार्थना करते। एक दिन बेईं नदी नहानें के बाद वे नगर से दूर कबरिस्तान में जाकर समाधिस्थ हो गये। तीन दिनों तक इनका कोई पता न चला। लोगों ने समझा कि वे पानी की तेज़ धारा में बह गये होंगे। किन्तु नानक तो ईश्वर भक्ति में खोये हुये थे। उन्हें तभी ईश्वरीय आह्वान और प्रकाश की प्राप्ति हुई ताकि वे अपना संदेश फैलायें और समाज पर आये हुए संकटों को दूर करें।

इस समय श्री गुरु नानक देव जी का एक अनन्य शिष्य भाई भगीरथ श्रद्धापूर्वक तीन दिन से उनके दर्शन के लिए एकाग्र चित्त होकर नदी किनारे खड़ा रहा। गुरु नानक देव जी ने प्रसन्नता पूर्वक उसकी श्रद्धा भक्ति देखकर भाई भगीरथ को मूल मंत्र एवं निर्मल वेश देकर उपकृत किया। इस प्रकार भाई भगीरथ पहला निर्मल संत कहलाया। भाई भगीरथ जी ने सतगुरु की स्तुति में एक 'वार' भी लिखी है जिसमें कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं:–

बाबा बेंई नाइ कै सचखण्ड में पहुता जाई।
बेंई विचों निकले तन पर भगवे बसन सुहाई।
बैठे कबर स्थान में दरशन कउ उमड़ी लोकाई।
वाहिगुरु सतिनामु दे, चारि वेद कउ सारि बताई।
रीति फकीरी धार के, मरदाना बाला संगाई
खंड ब्रहमंडी सैलकर भव निध तारी खलक सबाई।
निर्मल पंथ चलाया एक विवेक भगति द्रिड़ाई।
साधन कठिन छड़ाई कै गुर सिखी की रीति चलाई।
कलियुग नानक कला दिखाई।

(वार भागीरथ पउड़ी 33)

इस प्रकार श्री गुरु नानक देव जी से गुरु मंत्र प्राप्त करने वाला प्रथम निर्मल भाई भगीरथ है। भाई भगीरथ का गाँव 'मैलसींहा' जिला कपूरथला में है। भाई भगीरथ गुरुनानक देव जी की शरण में आने से पूर्व कालीदेवी के उपासक थे। आप जी के सम्बन्ध में भी लिखा है–

मैलसीहां विच आखीऐ भागीस्थ काली गुण गावै'

(वार–11/14)

यहां यह कर देना भी आवश्यक है कि बेईं नदी के जिस घाट से गुरुनानक देव जी प्रकट हुए थे उस गुरुद्वारा साहिब का नाम 'संतघाट' प्रसिद्ध है। भगवे वस्त्र धारण करना, घर का त्याग, जंगल में एकांत बैठ जाना, जन साधारण का दर्शन करने के लिये आना और सब को 'सत्नाम' का उपदेश देना। इस मर्यादा का पालन आज तक निर्मल सम्प्रदाय में हो रहा है। वास्तव में श्री गुरुनानक देव ने अपनी संगत का नाम 'निर्मल पंथ' नियत किया है। भाई गुरुदास जी ने इस का अनुमोदन किया है–

मारिया सिक्का जगत विच, नानक निर्मल पंथ चलाया।

(वार–भाई गुरदास 1.45)

निर्मल सम्प्रदाय–उद्‌भव और विकास

गुरुमत और गुरुवाणी के प्रचार में दो सम्प्रदायों का विशेष योगदान रहा है– एक है उदासीन अथवा उदासी सम्प्रदाय और दूसरा है–निर्मल सम्प्रदाय। ये दोनों सम्प्रदाय सिक्ख इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं।

उदासी सम्प्रदाय का आरम्भ बाबा श्रीचन्द जी द्वारा हुआ। आपका जन्म भाद्र नवमी संवत् 1551 को तलवंडी नामक गाँव में, श्री गुरु नानकदेव एवं माता सुलक्षणा के घर में हुआ था। प्रसिद्ध है कि जन्म के समय शिशु के सिर पर जटा, देह पर सेली, कानों में कुण्डलादि अनेक अद्‌भुत चिन्ह विद्यमान थे, जिन्हें देखकर अनेक व्यक्तियों ने उन्हें साक्षात् भगवान् शंकर का अवतार माना।[1] स्वयं महाराज श्री गुरुनानक देव जी ने अपनी बहन बीबी नानकी को एक बार कहा था कि देखो–बहन! मैं तुम्हें अपने दिल की एक बात बताता हूँ कि इस शिशु में एक ईश्वरीय दिव्यता है और यह हमारे प्रेम के कारण इस पृथ्वी पर आया है। इसका व्यक्तित्व विलक्षण है और इसके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय विश्व में प्रसिद्ध होगा। गुरुनानक देव जी के ये वचन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुये।[2]

उदासी परम्परा के अनुयायियों को नानक पुत्रों के रूप में जाना जाता है। गुरुवाणी को समझने एवं प्रचार में सबसे प्रथम योगदान इन्हीं साधुओं का है।

उदासी सम्प्रदाय के पश्चात् गुरुवाणी के प्रचार एवं प्रसार तथा उसके चिंतन मनन करने और उसके अनुसार जीवन जीने का श्रेय यदि किसी को है तो वह है– निर्मल सम्प्रदाय। अपने अध्यन–अध्यापन, भारतीय दर्शन और साहित्य के साथ निकटता इस सम्प्रदाय के प्रमुख गुण हैं। भारतीय दर्शनों में से वेदांत, सांख्य, चिकित्सा शास्त्र में ये लोग विशेष प्रवीण हैं।

---

1. डॉ. जगन्नाथ शर्मा हँस का एक लेख 'चेतहु नगरी, तारहु गाँव' (हिन्दी हिन्दुस्तान)
2. Sikh Review October 1994 पृष्ठ 13

(क) निर्मल सम्प्रदाय का उद्भव:

इस सम्प्रदाय का आरम्भ गुरु नानक देव जी के युग में ही हो गया था, लेकिन दूसरी मान्यता के अनुसार इस सम्प्रदाय का उद्भव दशम् गुरु गोबिंद सिंह का जीवन काल है। पहले मत का समर्थन करते हुये अपनी रचना ''निर्मल पंथ प्रदीपिका'' में ज्ञानी ज्ञान सिंह का कथन है कि साधारणतः सिक्ख मत पर विश्वास रखने वाले लोग गृहस्थ जीवन ही व्यतीत करते थे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने वैराग्य को अपना लिया था। यही लोग निर्मल कहलाने लगे, अपने मत की पुष्टि के लिए इन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब में से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इनका यह भी कथन है कि ''निर्मल पद'' गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव वाणी में तो उपलब्ध है ही, भट्टों की रचनाओं में भी मिलता है। यथाः–

अहिनिसि नवतन निरमला मैला कबहूँ न होइ

(गुरु ग्रन्थ साहिब पृ०790)

अर्थात्–रात दिन मैं नूतन और निर्मल होकर रहूँ, मुझे मलिनता कभी न छुये।।

सबदि रते से निरमले हउ सद बलिहारै जासु

गुरु ग्रन्थ साहिब (पृ० 27)

अर्थात्–जो गुरु के उपदेश में रत है मैं उनके बलिहार जाता हूँ।

साध संगि होइ 'निरमला' नानक प्रभ कै रंगि

गुरु ग्रन्थ साहिब (पृ० 297)

अर्थात् जो मनुष्य गुरु की संगति में रहकर परमात्मा के प्रेम रंग में रंगा रहता है, वह पवित्र जीवन वाला (निर्मल) हो जाता है।

निरमल भेख अपार तासु बिनु अवरु न कोई

गुरु ग्रन्थ साहिब (पृ० 1409)

अर्थात्–तुम हरि का निर्मल वेश हो, तुम्हारे सिवा अन्य कोई नहीं।

जो निरमलु सेवे सु निरमलु होवै

गुरु ग्रन्थ साहिब (पृ०1 2 1)

अर्थात्–जो उस निर्मल परमात्मा की सेवा करता है वही निर्मल होता है।

इन उदाहरणों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि गुरु नानक देव जी ही 'निर्मल मत' के प्रवर्तक थे। भाई गुरुदास जी ने तो स्पष्ट ही लिखा है–

'मारिया सिक्का जगति विच नानक निर्मल पंथ चलाया'

वारां भाई गुरुदास 1 .4 5

लेकिन कुछ विद्वानों ने शंका करते हुये कहा है ये उद्धरण आध्यात्मिक अर्थ के परिचायक हैं न कि सम्प्रदाय विशेष के।

इन पदों में निर्मल शब्द का अर्थ कहीं भी निर्मल संत या निर्मल सम्प्रदाय का द्योतक नहीं है। निर्मल सम्प्रदाय के अर्थ में निर्मल शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है जबकि गुरुवाणी के संदर्भ में यह निर्मल विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

'निर्मल' पद से निर्मल पंथ का अर्थ ग्रहण करने में यह प्रयोजन निहित है कि निर्मल पंथानुयायी विद्वान् एवं इतिहासकार इस पंथ का सम्बन्ध श्री गुरु नानक देव से जोड़ते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को जानने के लिए निर्मल इतिहासकारों के मतों पर दृष्टिपात करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

(ख) निर्मल सम्प्रदाय का उद्भव : निर्मल इतिहासकारों के मत

महन्त गणेशा सिंह के अनुसार, "निर्मल भेख अनादि है, वर्तमान समय में श्री गुरु नानक देव जी महाराज द्वारा प्रचलित हुआ, गुरु गोविन्द सिंह महाराज द्वारा शिक्षा तथा वरदान प्राप्त कर प्रसिद्ध हुआ और उसी ध्रुवै पर चला आ रहा है जिस पर श्री गुरु जी ने नियत किया था।" [1]

महन्त दयाल सिंह के शब्दों में, "गुरु नानक देव जी ने प्राणी मात्र को संसार–समुद्र से पार कराने के लिए एक निरोल ईश्वर की भक्ति नाम–स्मरण रूप निर्मल–पंथ (निर्मल मार्ग) स्थापित किया। जिस द्वारा सुखेन ही जीवों

1. निर्मल भूषण, पृ0 3

का निस्तार हो जाए।"[1] वे अन्यत्र स्पष्ट करते हैं," बाबे नानक जी के चलाए हुए भगति रूपी निर्मल पंथ के साथ–प्यार करने वाले जिज्ञासु–गृहस्थी, या अतीत–सब निर्मल या निर्मलपंथी नाम करके प्रसिद्ध हुए।"[2]

ज्ञानी ज्ञान सिंह जी का अभिमत है, "श्री गुरु नानक जी से लेकर दशम् पातिशाह पर्यन्त जो लोग गृहस्थी, सेवक, उपदेशी होते रहे सो केवल गुरु के सिक्ख, मशहूर हुए जो विहंगम वैराग्यवान् गृहस्थ छोड़कर उपदेश लेकर चले गुरु के रते रहे। सौ निर्मले सिक्ख कहे जाते रहे।"[3] वे पंथ प्रकाश में इसी तथ्य की पुष्टि करते है:–

निरमल पंथ इहू गुरु चलायो।
श्री गुरु नानक खुद परगटायो।।4

इस तरह उनकी यह आस्था है कि गुरु नानक देव जी ने निर्मल पथं का प्रवर्तन किया और सिक्ख मत का पर्याय ही निर्मल पंथ है।

इस मत की पुष्टि के लिए निर्मल इतिहासकारों ने ग्रन्थों में प्रायः समान रूप से निम्नलिखित उद्धरण भी दिये हैं, जो अवलोकनीय है–

बाबा बेईं न्हाई कै, सच खण्ड विच पहुँचा जाई
निर्मल पंथ चलाइओ इक विवेक मग द्रिढ़ाई

(भाई भागीरथ)

कलियुग नानक निरमला पंथ चलाइउ आए

(गोष्ठ मक्का)

गुरु अर्जुन जह बैठ कर बाँधी बीड़ सुग्रन्थ
जहि प्रसाद सम जगत में, चलि है निर्मल पंथ

(गुरु–विलास–6)

योग भेस सो दोनों रीता
दई पंथ निर्मल को चीता

(संतोष सिंह)

डॉ. हरभजन सिंह ने लिखा है कि इससे इतना सिद्ध होता है कि निर्मल

---

1. निर्मल पंथ दर्शन, पृ0 1055
2. बाबे नानक दा निर्मल पंथ, पृ0 22
3. निर्मल पंथ प्रदीपिका, पृ0 4
4. पंथ प्रकाश, पृ0 1246

पंथी विद्वान अपने पंथ का आरम्भ गुरुनानक से मानते हैं तथा अन्य खालसा मतावलंबियों के समान दसों गुरुओं में विश्वास रखते हैं।"[1]

(ग) संस्कृत विद्या प्राप्ति हेतु काशी भेजना

एक मान्यता निर्मल सम्प्रदाय के सम्बंध में यह है कि श्री पाँवटा साहिब (हिमाचल प्रदेश) नामक स्थान पर निवास करते समय दशम् गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सन् 1686 ई0 में पाँच शिष्यों को संस्कृत विद्या प्राप्त करने के लिए बनारस भेजा था। इन पाँच शिष्यों के नाम थेः– कर्म सिंह, गण्डा सिंह, राम सिंह, सैणा सिंह और वीर सिंह। बनारस से शिक्षा प्राप्त कराने के बाद सन् 1699 में आनंदपुर में खालसा स्थापना के समय इन लोगों ने पाँच प्यारों में भाई धर्म सिंह और दया सिंह के हाथों अमृतपान किया। अमृतपान करने वाले ये पाँच सिक्ख ही 'निर्मले संत' कहलाए।

श्री हरि सिंह विरचित 'निर्मल वेश का इतिहास अते साम्प्रदायिक वंशावली' के पृ0 48 में भी यही कहा गया है कि निर्मल पंथ के बहुत से सम्प्रदायों का आरम्भ भाई धर्म सिंह और भाई दया सिंह से हुआ था। इस मान्यता से भी इसी बात को बल मिलता है कि पाँच प्यारों में से दो के हाथों अमृत पान करने वाले उन संस्कृत के पाँच विद्वानों से ही निर्मल सम्प्रदाय आरम्भ हुआ था।

गुरु गोबिन्द सिंह जी सन् 1676 ई0 में गुरु पद पर आसीन हुए। वे क्रांतिकारी, युगद्रष्टा और सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे। वे महान् योद्धा एवं साहित्कार थे, उनके दरबार में 52 कवि थे। तत्कालीन विषम स्थिति से जूझने की उनमें अपार क्षमता थी, उनकी दृष्टि पैनी थी। एक और भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के लिए कृतसंकल्प विदेशी राज्य सत्ता तलवार का खुला प्रयोग कर रही थी, दूसरी ओर ब्राह्मणवाद के कारण मूल सांस्कृतिक भावनाएं पाखण्ड के भार से कुचली जा रही थी। उन्होंने विदेशी सत्ता को चुनौती देने के लिए तेग् को सम्भाला, भक्ति को शक्ति से जोड़ा तो आन्तरिक खोखलेपन को दूर करने के लिए संस्कृत का पुनरुत्थान अनिवार्य समझा। ब्राह्मणों ने संस्कृत को अपने तक ही सीमित करके ज्ञान को परिमित ही नहीं संकीर्ण तथा रूढ़िग्रस्त भी कर दिया था। पर दशम् गुरु ने अपनी अन्तर्दृष्टि से संस्कृत में निहित मूल सांस्कृतिक चेतना

1. डॉ० हरभजन सिंह 'पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान' पृ0 168

के तत्त्वों को परख लिया था। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का ब्रजभाषा में अनुवाद करवाया था। पर इतना ही पर्याप्त नहीं था। वे समझते थे कि सिक्ख मत का प्रचार एवं प्रसार भी संस्कृत भाषा के ज्ञान माध्यम से किया जा सकता है। संस्कृत के मूल ग्रन्थों के आधार पर गुरुमत की सैद्धान्तिक व्याख्या से सांस्कृतिक एकता का विकास होगा और गुरुमत को पुष्ट तथा व्यापक आधार पर गुरुमत की सैद्धान्तिक व्याख्या से सांस्कृतिक एकता का विकास होगा और गुरुमत को पुष्ट तथा व्यापक आधार मिल जाएगा। इसलिए संस्कृत पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को भंग करने के लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने श्री पाँवटा साहिब में पं0 रघुनाथ के पास कुछ सिंहों को संस्कृत पढ़ने के लिऐ भेजा। पर उसने छोटी जाति के शिष्यों को संस्कृत पढ़ाने से इनकार कर दिया। सभी निर्मल – इतिहासकारों ने इस घटना का उल्लेख किया है। पं0 रघुनाथ की संकीर्णता से क्षुब्ध होकर दशम् गुरु श्री गोबिन्द सिंह जी ने जोश में आकर जो शब्द कहे थे, उनका निर्देश 'पंथ प्रकाश' में इस प्रकार है:–

इनही मेरे सिखन ते लख। विद्या वेद पढ़ेंगे द्विज दख्ख।।
निगमागम लौ चौदस विद्या। मैं बख्शी सिखहि परिसिध्या।।1

भाई कान्ह सिंह के अनुसार, "गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नाम के अभ्यासी विद्या के चाहवान्, अतीत वृत्ति वाले पांच अनुयायियों–गंडा सिंह, करमसिंह, वीर सिंह, रामसिंह, सोभासिंह को बह्मचारी के वेश में संस्कृत विद्या पढ़ने के लिए काशी में भेजा"[2]

इस तथ्य की पुष्टि ज्ञानी सिंह ने भी की है। दशम् गुरु जी के आदेश के सम्वत् 1742 वि. (सन 1685 ई) को पांच सिक्ख काशी में विद्या पढ़ने के लिए गये पर यहां सोभा सिंह के स्थान पर सैना सिंह के नाम का उल्लेख है।[3] जबकि महन्त दयाल सिंह ने 6 नामों का उल्लेख किया है– "गंगा सिंह, करमसिंह, वीरसिंह, राम सिंह, सोभासिंह और सैना सिंह।"[4] वस्तुतः पाँच प्यारों की तरह पांच शिष्य ही भेजे गये होंगे।

---

1. पंथ प्रकाश, पृ0 1250
2. महान कोश, पृ0 712
3. तबारीख गुरु खालसा (भाग 1) पृ0 1532
4. निर्मल पंथ दर्शन, पृ0129

ये ब्रह्मचारी संत चेतन मठ में पण्डित सदानन्द से यहां कई वर्ष अध्ययन करते रहे। कई विद्वानों का मत है कि यह 'निर्मल' संज्ञा बनारसी पण्डितों द्वारा दी गई है, क्योंकि इन सिक्खों ने सफेद वस्त्र धारण किए हुए थे और दस्तारें सजाए हुए थे तो बनारसी पण्डित उन्हें 'निर्मल' कहने लगे। डा0 तेजा सिंह के अनुसार, "धर्म प्रचार के केन्द्रीभूत वही सन्त थे, जिन्होंने बनारस में रहकर संस्कृत विद्या पाई थी और पण्डितों के मध्य में रहते हुए 'निर्मल' संज्ञा प्राप्त की थी। 'निर्मल' शब्द खालसा (फारसी) शब्द का संस्कृत पर्याय है और दोनों का अर्थ पवित्र व्यक्ति है।"[1]

ज्ञानी ईशर सिंह नारा के मतानुसार, "संस्कृत में प्रवीणता प्राप्त करके जब ये सिक्ख दशम गुरु जी के दरबार में आए, तो गुरु जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और 'निर्मल' संज्ञा से अभिहित किया–ये मेरे निर्मले– ये हैं मेरे निर्मले सन्त।"[2]

अन्तिम मत ग्राह्य होना चाहिए क्योंकि निर्मल पंथ के इतिहासकार जब दशम् गुरुजी के दरबार में आये तो गुरुजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और निर्मल संज्ञा से अभिहित किया – ये मेरे निर्मले–ये हैं मेरे निर्मले संत।

(1) **श्री गोबिन्द सु सिंह है, पूरन हरि अवतार।**
रच्यो पंथ भव में प्रगट दो बिध को विस्तार।।
एकन के कर खड्ग दै भुज बल बहु विस्तार।
पालन भूमि को करयो दुष्टन मूल उखार।
औरन को पिख विमल दीनै परम विवेक।
निरमल भाखै जगत तिन हैरे ब्रह्म सु एक।।3

ज्ञानी ज्ञान सिंह ने इसी अभिमत का समर्थन दशम् गुरु के इन शब्दों के माध्यम से किया है, जैसे दोनों पंखों के सहारे पक्षी बहुत उड़ान लेता है, एक पंखहीन पक्षी उड़ नहीं सकता वैसे मेरा पंथ दोनों विद्याओं और दोनों मार्गों सहित वृद्धि को प्राप्त होगा। यों दोनों मार्ग पंथ खालसा की दोनों भुजाएँ हैं।

---

1. सिक्खइज्म इटस् आडिअलज एण्ड इन्स्टिच्यूशन, पृ0 68
2. संक्षेप इतिहास निर्मल सम्प्रदाय, (शो० प०), पृ0 5
3. मो०प०प्र० 5/88–89

(घ) निर्मल सम्प्रदाय का विकास

सन् 1699 में श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने खालसा पंथ की स्थापना की। जब यह समाचार संस्कृत विद्याध्ययन में निरत–काशी स्थित दशम् गुरु के शिष्यों ने सुना, तो उनसे रहा नहीं गया। वे 13–14 वर्ष से विद्या प्राप्त कर रहे थे। संस्कृत के विद्वान् हो गये थे। वे भी दशम् गुरु के दरबार में उपस्थित हुए। उन्होंने संस्कृत श्लोकों में गुरु जी की स्तुति की। गुरु जी उनकी विद्वता से हर्षित हुए। उन विद्वानों ने भी भाई दया सिंह व भाई धर्म सिंह से अमृत पान किया। अमृत छकने के बाद भी निर्मल सन्तों की वृत्ति पूर्ववत् सात्विक एवं वैराग्यमयी बनी रही। उनके शान्त तथा समदर्शी व्यवहार से दशम् गुरु बड़े प्रसन्न थे। उनके सत्संग और कथा–वार्ता से सब लोग लाभन्वित होते रहे। महन्त गणेशा सिंह के अनुसार, 'वास्तव में एक श्री सतगुरु जी का वरदान, दूसरा नित्य का अथक अभ्यास, तीसरे चित्त का प्रेम, चौथे धर्म प्रचार की चाह, पांचवें पंथ में विद्या लाने की उमंग, इस प्रकार कर्म सिंह आदि कई योग्य पण्ड़ित हो गये और गुरु जी के पास वापिस आकर दरबार में शुक्रनीति, चाणक्य नीति, महाभारत आदि का भाषानुवाद भी किया।

जब श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने आनन्द पुर छोड़ा तब निर्मल सन्तों में भी एक नया मोड़ आया। दरबार का वातावरण छूट गया। बावन कवियों के कितने की ग्रन्थ सरसा नदी में बह गये। उनमें से न जाने निर्मल–विद्वानों द्वारा अनूदित कितनें ग्रन्थ होंगे। सन् 1708 ई0 में दशम् गुरु जी के परमज्योति में लीन होने पर पांचों प्यारों में से भाई दया सिंह और धर्म सिंह, जो गुरु गोबिन्द सिंह जी के साथ ही नांदेड़ में आये थे, तथा अन्य अनेक शस्त्रधारी सिंह दशम् गुरु जी के वियोग में सन्तप्त अपना सैनिक वेश परित्याग कर कत्थई वस्त्र पहन कर निर्मल साधु बन गये। जिसका उल्लेख ज्ञानी ज्ञान सिंह ने किया है:–

तब दया सिंघ, उशनाक, सेणा सिंध वीर म्रिगेश जू।
सिंघ कर्म, गंडा हरि गरजा राम सिंघ महेश जू।
इतयादि सिंघ बहु शसत्र तज कै वस्त्र धारि कथाह है।
बनि जगत तै विरक्त भगत सु 'संत निरमल' अखाइ है।।

(पंथ प्रकाश पृ0 235)

निर्मल सन्त स्थान–स्थान पर घूम कर कथा–वार्ता करते थे। अपनी विद्वत्ता और त्यागमय और आदर्श जीवन द्वारा लोगों को प्रभावित करते थे। गांवों में स्थानों की कमी न थी, लोग उन्हें आश्रय देते थे। वहां निर्मल विद्वान कथा–वार्ता आरम्भ कर देते, जिसका रसपान करने के लिए लोगों का आना–जाना शुरू हो जाता था। जब जब वृत्ति रमती, निर्मल सन्त वहां टिकते और गुरुमत का प्रचार करते थे। कई निर्मल विद्वानों को तो ज़मींदार लोग जमीन जायदाद आदि दान में लेने की पेशकश करते थे तो वहां उन्होनें लोक–हितार्थ धर्मशालाएं बना दी। प्राप्त होने वाली खाद्य सामग्री भी वे जरूरतमन्दों में बांट देते थे। इस तरह उन्होंने लोगों का विश्वास प्राप्त कर लिया था। वे निर्मल–सन्त पूर्णिमा, अमावस, संक्रान्ति आदि धार्मिक पर्वों पर दीवान भी सजाते, श्री गुरुग्रन्थ साहिब का प्रकाश करते, गुरुवाणी की व्याख्या करते और उसकी व्याख्या में हिन्दू–धर्म ग्रन्थों के उद्धरण होते थे जिससे अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू उस और आकर्षित होने लगे।

निर्मल विद्वान कई स्थानों पर टिक गये। वही स्थान उनके डेरे कहलाए। वहां वे लोगो को गुरुमुखी पढ़ाते। अपने शिष्यों को संस्कृत–ग्रन्थ पढ़ाते, आने–जाने वालों के लिए ठहरने का सुचारु प्रबन्ध भी करते। मधुकरी वृत्ति से उनके भोजन की व्यवस्था होती थी। डेरे के महन्त को किसी व्यवस्था की चिन्ता न थी।

कई निर्मल–सन्त आयुर्वेद के ज्ञाता थे, वे अपने साथ औषधियां रखते थे और रोगियों का उपचार करते थे। जनता की सेवा ही उनके जीवन का आदर्श था। ऐसी लोकप्रियता की पृष्ठभूमि में वे गुरुमत का प्राचार करते थे। अनेक लोगों ने स्वेच्छा से अमृत पान किया और वे सिक्ख बन गये। धीरे–धीरे उनके सेवकों की संख्या बढ़ती गई। उनके द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से अनेक स्थानों पर बड़े बड़े डेरे बन गये। कई स्थानों पर प्रतिष्ठित ज़मींदारों ने जमीन देकर उन डेरों की आमदनी में वृद्वि की। इस तरह विरक्त वृत्ति के धुमक्कड़ निर्मल सन्तों के अनेक डेरे स्थापित हो गये। एन्साइक्लोपीडिया आफ रे0 एण्ड ए0 के अनुसार, ''वे एक बड़ी सुसंगठित, अनुशासित और प्रतिष्ठित जत्थेबन्दी बन गई।''[1]

1. डॉ. जुगल किशोर त्रिपाठी कृत 'पं० गुलाब सिंह कृत 'अध्यात्म रामायण का अनुशीलन' से उद्धृत पृ0 13

दस आशीर्वाद

गुरु गोबिन्द सिंह ने निर्मले संतों की साधना, सिमरन, तप, विद्या, विवेक, संतोष, त्याग, समता, उदारता, अपरिग्रह, साधुता, ब्रह्मचर्य, नाम–जप, सेवा आदि गुणों को देख कर समय समय पर प्रसन्नता में कई बार आशीर्वाद, वरदान प्रदान किये, जिनमें से श्री गुरु गोबिन्द जी के दस आशीर्वाद प्रसिद्ध हैं। इनको निर्मल सम्प्रदाय में 'दस बख्शिशें' कहा जाता है। इनमें से कुछ का वर्णन 'सरब लोह प्रकाश' ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक आया है जिन का वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं।[1]

पहला वरदान

पाँचों निर्मल विद्वान महापुरुषों का सतोगुणी, शील स्वभाव, विवेक, बुद्धि, ज्ञान एवं नम्रता देखकर गुरु जी ने यह वरदान किया।

काहूँ से न राखे राग, दवैख हूँ न काहू संग
लोक कुल लाज खट खटो जिन न को है।
निम्रता से भरे रिदे निपुंनता धरे रहे,
राम क्रिश्न हरे पारब्रहम बोध जाको है।
निगम प्रवाह नितय जिन के निहाल सिंह,
गिरा गुरु ग्रन्थ की मैं जाको प्रेम बाको है।
निताप्रति निरोपाधि अहंब्रह्म बोध जाके
द्वैत मल कटी निरमले नाम या को है

निर्मल–पंथ दो रूपों में प्रसिद्ध रहेगा। वह ज्ञान खड्ग के द्वारा काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मोह, अहंकार, द्वैत, आसुरी सम्पदा का नाश करेगा। वह किसी के साथ भी राग, द्वेष नहीं करेगा। सारी मानवता को नम्रतापूर्वक नाम वाणी के साथ जोड़ेगा। समस्त प्राणी मात्र को अपनी ही आत्मा मानेगा और मनन करायेगा। ऐसे वरदान गुरु कलगीधर ने प्रदान किये।

---

1. निर्मल पंथ दी गौरव गाथा– लेखक ज्ञानी बलवंत सिंह कोठागुरु से उद्धृत पृष्ठ 28

दूसरा वरदान

एक बार दशम् गुरु गोबिन्द सिंह जी ने भगवे वस्त्र धारण किये और साधु का रूप धारण कर आनंदपुर में चल रहे लंगरों का निरीक्षण किया। दूसरे दिन भगवे वस्त्रों को निर्मले संतों को प्रदान कर दिया।

तीसरा वरदान

एक बार दशम् गुरु गोविंद सिंह जी ने 'कड़ाह प्रसाद' की देग के कड़ाहे निकालकर संगत को लूटने के आदेश दिये। संगत लूटने लगी। लेकिन कुछ सिंह आराम के साथ शान्त एकाग्र चित्त बैठे रहे। इस पर गुरु जी ने प्रसन्नता के साथ कहा– निर्मले सन्तों ने सिक्खी पंथ में संतोष का बीज रख लिया है।

चौथा वरदान

एक दिन दशम् पातशाह ने आनंदपुर के समस्त सिक्खों के डेरे का ब्रह्म मुहूर्त में निरीक्षण किया। देखा कोई सोया पड़ा है, कोई गप्पें हाँक रहा है। केवल एक डेरे में सिक्ख, सिमरन, नित्य–नियम, गुरुवाणी पढ़ते देखे। बाद में गुरु जी ने दीवान में कहा आज हमने आलस्य से रहित केवल निर्मल संतों को देखा है जो सावधान होकर नित्य नियम करने में लगे हुये थे।

पाँचवा वरदान

एक दिन आनंदपुर में तमाशा दिखाने वाले नट आये। सब तमाशा देखने लगे। गुरु जी ने निरीक्षण किया तो १७ निर्मले संत अपने पठन–पाठन में लगे हुए देखे गए। सतगुरु जी ने आदेश दिया 'जगत् तमाशे को असत्य मानने वाले केवल निर्मले संत हैं जिनके मन एकाग्र हैं। इसलिये निर्मले संतों के कारण पंथ की सदैव शोभा बढ़ेगी।

छटा वरदान

एक बार दशम् पातशाह के सेवक निर्मले संत भाई चंदन सिंह का सामान चोर चोरी करके ले गये। लेकिन चोर शीघ्र ही पकड़ा गया और उसे महाराज जी के सम्मुख उपस्थित किया गया। गुरु जी ने चंदन सिंह को बुलाकर

पूछा– 'भाई चोर को क्या दण्ड दिया जाये? चंदन सिंह ने प्रार्थना की 'सच्चे पातशाह! चोर ज़रूरतमन्द होगा, इसको पूछकर इसकी अन्य ज़रूरतें भी पूरी कर दो ताकि भविष्य में चोरी न करे।'

गुरु जी ने प्रसन्न होकर कहा 'भाई चंदन सिंह! तू तो ब्रह्म ज्ञानी निर्मल संत हो। तुम्हारे शुभ गुण निर्मल पंथ के गुण बनेंगे।'

सातवाँ वरदान

एक दिन निर्मले संत भाई संत सिंह को पकड़ कर गुरु जी के पास ले आये और शिकायत की कि इसने कच्छा, कृपाण आदि ककार चिह्नों को त्याग दिया है। गुरु जी ने संत सिंह से पूछा। उत्तर में संत सिंह ने कहा–महाराज! आप जी के सत्य उपदेश को धारण करके मैं पँचकोश से असंग हो रहा हूँ, आपजी की मर्यादा तो देह अभिमानी कर्म काण्ड वालों के लिए है। यदि आप जी का शिष्य बनकर स्थूल कर्म काण्ड के बंधन न टूटे तो यम के बंधनों से जीव किस प्रकार मुक्त होगा? गुरु जी ने हँसकर सिक्खों को कहा 'तुम ने तो निर्मले संत की शिकायत कर दी। ब्रह्मज्ञानी के ऊपर किसी कर्मकाण्ड का बंधन नहीं है।'

आठवाँ वरदान

मालवे के दौरे के समय गाँव दीने से मुक्तसर जाते हुये सतगुरु जी ने गाँव सरावां, बहिबल (ज़िला फ़रीदकोट) में एक रात्रि विश्राम किया। क्षेत्र में अकाल पड़ा हुआ था। सत् गुरु जी ने फ़रमाया 'सामूहिक लंगर बनाने की बजाये, गाँव वाले दो–दो सिंहों को घर ले जाकर लंगर छका लायें।' अतः ऐसा ही किया गया। अन्तर्यामी सत् गुरु जी आये सिंहों को पूछने लगे कि सिंह क्या–क्या छक कर आये हैं? किसी ने कड़ाह प्रसाद, किसी ने परौंठा, किसी ने खिचड़ी–दूध, किसी ने दलिया, किसी ने बाजरे के किसी ने चनों के मिस्से प्रसादे (मिस्सी रोटी) बताई।

जब भाई मैलागर सिंह, ने भाई गज्जा सिंह को पूछा तो उन्होंने प्रसन्न मुख से कहा 'हमने अत्यंत स्वादिष्ट भोजन ग्रहण किया है।' लेकिन गाँव के निवासी बोले 'जिस सिक्ख के घर में छकने के लिये गये थे, उसके घर तो

खाने के लिए कुछ भी नहीं'। ये झूठ बोल रहे हैं। सतगुरु ने गाँव के प्रेमी से पूछा। वे रुद्धकण्ठ होकर चरणों में गिर पड़ा और बोला 'सच्चे पातशाह' मेरे घर में खिलाने के लिए कुछ नहीं है, इन संतोषी सिक्खों के सम्मुख पानी में भिगोकर जण्ड की फलियां और सूखी पीलें रख दी थी। यही कुछ प्रेम के साथ छककर अरदास करके आ गये हैं।"

सतगुरु जी अत्यंत प्रसन्न हुये। श्री मुख से तीन बार 'धन्य सिक्खी, धन्य सिक्खी, धन्य सिक्खी, कहा। साथ ही यह भी कहा कि 'जो सब प्रकार के पदार्थों के होते हुए विरक्त संतों–सिक्खों को न खिलाये, और सिक्ख–साधु ग़रीब सिक्खों से स्वादिष्ट पदार्थो की मांग करे, दोनों को धिक्कार है। सखी (उदार, दानी) सिक्ख वह है जो यथाशक्ति गुरु सिक्खों की सेवा करे, जिस प्रकार इस गाँव वाले प्रेमी ने की है। संतोषी सिक्ख वह है जो साधारण भोजन को अमृत के समान आनंद पूर्वक स्वीकार करे। जैसे भाई मैलागर सिंह, भाई गज्जा सिंह का व्यवहार महान् है। "सूरज प्रकाश" में लिखा है–

गुरु करयो सिखी धन धन
देख भाउ को भए प्रसंन
ऐस सिख वी वीच पंथ सुहाए
सती दे संतोषी खाए।

नौवां वरदान

एक बार गुरु की काशी तलवंडीसाबो में दीवान में बैठे थे। सत् गुरु जी ने अपने आनंद में फरमाया 'संगत में से जिस प्रेमी को जिस इच्छा की चाहत है, मांग लो। मांगे मांगने वालों का कोलाहल पड़ गया। कोई पुत्र की कामना कर रहा है, कोई दूध मांग कर रहा है, कोई धन मांग रहा है, कोई भव्य–भवनों की याचना कर रहा है। मांगे मांगने की प्रत्येक को उत्सुकता है। इस समय कुछ सिक्ख शान्त चित्त निश्चिंत बैठे हैं। इनके मन में किसी प्रकार की कोई कामना नहीं थी। सत् गुरु जी ने समस्त संगत की मनोकामनायें पूर्ण करके, शान्त चित्त सिक्खों को पूछा 'तुम भी अपनी इच्छा प्रकट करो। 'सारी संगत मांगे मांग रही है।'

सत् गुरु जी ने प्रसन्न होकर फ़रमाया संसारी पदार्थों का त्याग केवल संत ही कर सकते हैं। ब्रह्मा विद्या का आनंद भी केवल निर्मले संत ही ले सकते हैं। पंडित निहाल सिंह जी ने कितना सुंदर लिखा है–

श्री गुरु लगायो एक दिन में दीवान ऐसो
सबसो बुलाये कहयो मांगो जो जो रिदे भले
काहूँ धन, काहूँ धाम, काहूँ असव, अभिराम काहूँ
कहयो भूखन जराऊ जो सजे गले
काहू शसत्र, काहू वसत्र, संत खुशी मृगराज
सब को दबायो जो जो भायो प्रेम मै ढले
सुपन जयो जानि के पदारथ न मांगे जिनो
नाम धन मांगयो ता को कहयो ये निरमले

ज्ञानी ज्ञानी सिंह जी 'पंथ प्रकाश' में लिखते हैं–

सुपन समान जग जान जिने नाम मांगिउ
खुशी हुए बोले गुर एही मेरे निर्मले।

पंडित तारा सिंह जी नरोत्तम ने लिखा है, 'इस समय सत् गुरु जी ने सिक्खों के तीन भेद बना दिये। सिंह, सिख और निर्मले।''भाई संतोष सिंह जी ने भी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित किया है

गुरु का दल शेर दा झल।
को घाले को पैथे मॅल।
को जूझे को सिमरे नाम
को सेवे सत् संग महान।

(२२)

लूटह जूझह सिंह कहीजै
सिमरहि नाम सु सिख लखीजै
सत संगत सेवे चित्त लाए
तातें निरमल नाम सदाए।

(२३)

दसवां वरदान

जब दशम् सत् गुरु जी ने श्री हजूर साहिब (नांदेड) में ब्रह्मलीन होने का संकल्प किया। राज भाग की इच्छा वाले शस्त्रधारी खालसे को बाबा बंदा सिंह जी की जत्थेदारी के अधीन अत्याचारियों को समाप्त करने हेतु पंजाब

की ओर भेज दिया। इस समय भाई कर्म सिंह जी, भाई राम सिंह जी, भाई गण्डा सिंह जी, भाई चंदन सिंह जी, भाई संत सिंह जी, भाई दरगाहा सिंह जी, भाई मान सिंह जी, भाई गज्जा सिंह, भाई मैलागर सिंह जी, भाई केसरा सिंह जी, भाई वीर सिंह जी, भाई सैणा सिंह जी, भाई शोभा सिंह जी आदि २५ नाम अभ्यासी विद्वान निर्मले संतों को फ़रमाया

'सिंहों! अब हम भाणा बरतेंगें, तुम समस्त संत कोने कोने में चले जाओ, नाम–वाणी, कथा कीर्तन का प्रवाह चलाओ, गुरु नानक की सिक्खी का गाँव–गाँव घर–घर संदेश पहुँचाओ। सिंह धर्म की रक्षा करेंगे, तुम धर्म का प्रचार करो। अमृत प्रचार, विद्या का प्रचार करो, गुरु नानक सदा अंग–संग रहेंगे। जाओ गुरु की खुशियाँ प्राप्त करो।'

डॉ. जुगल किशोर त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक 'पं0 गुलाब सिंह कृत 'अध्यात्म–रामायण' का अनुशीलन' में उचित ही कहा है कि 'इस तरह ज्ञानी ज्ञान सिंह ने निर्मल संतों से सम्बन्धित जिन साखियों व वरदानों का उल्लेख 'पंथ प्रकाश' में किया, वे सब गुरु गाबिन्द सिंह से सम्बन्ध रखती हैं। जैसे भगवे वस्त्र धारण करवा कर ब्रह्मचारियों को काशी में संस्कृत पढ़ने के लिये भेजना, भाई चंदन सिंह निर्मल की समता व त्याग वृत्ति की भावना, कड़ाह प्रसाद की लूट में निर्मल संतो का भाग न लेना, युद्धोंपरान्त अर्ध रात्रि पश्चात् निर्मल संतों की समाधि में लीनता, दरबार में स्वांग धारियों को अश्लील व कामुक चेष्टायें देखकर भी निर्मल संतों का आम सिक्खों की तरह विचलित न होना, इच्छानुरूप बहुमूल्य एवं दुर्लभ पदार्थों के बाँटने के समय भी निर्मल संतों की अपरिग्रह भावना आदि अवसरों पर गुरु गोबिन्द सिंह जी ने संतों की भूरि भूरि प्रशंसा ही नहीं की अपितु उन्हें वरदान भी दिये थे। इन घटनाओं से एक ओर निर्मल संतों के गुणों –समता, सन्तोष, अपरिग्रह, साधुता, ब्रह्मचर्य, नामजप में प्रवत्ति आदि पर प्रकाश पड़ता है तो दूसरी ओर यह स्पष्ट होता है कि ऐसे गुणी स्वानुयायियों को दशम् गुरु ने निर्मल संज्ञा प्रदान की।"

निर्मल संत साहित्य

निर्मल सन्त संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने बनारस, प्रयाग, उज्जैन, हरिद्वार, ऋषिकेश, लाहौर, अमृतसर, दमदमा साहिब और पटियाला आदि के डेरों में शिक्षा के प्रसार की उचित व्यवस्था की। गुरुमत के प्रचार के साथ उन्होंने शास्त्रीय प्रणाली से गुरुवाणी की व्याख्या करके पण्डित वर्ग में अपनी धाक जमाई और गुरुमत के साहित्य में वृद्धि की। इन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या वेदांत चिंतन के संदर्भ में की है। लगभग सभी निर्मल संत अद्धैत वेदांत दर्शन के पक्षधर थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतीय दर्शन शास्त्र में भी साहित्य–सृजन कर अपना नाम रोशन किया।

यह ठीक है कि विगत सवा सौ वर्षों में निर्मल सन्तों का झुकाव पंजाबी भाषा में साहित्य सृजन की ओर होता गया है पर विगत पांच सौ वर्षों के हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करने से भी स्पष्ट हो जाता है कि निर्मल सम्प्रदाय के सन्तों ने हिन्दी साहित्य सृजन में भी महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।

1 निर्मल सन्तों द्वारा प्रस्तुत प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद, रूपान्तरण एवं टीकाएं।

2 निर्मले सन्तों द्वारा सम्पादित गुरुवाणी की टीकाएं।

3 निर्मले सन्तों द्वारा विरचित सिक्ख इतिहास से सम्बन्धित काव्य।

4 निर्मले सन्तों द्वारा विरचित पौराणिक विषयों के काव्य।

निर्मल सम्प्रदाय के प्रमुख साहित्यकारों में पं० गुलाब सिंह, पं० तारा सिंह, पं० बाबा नानू सिंह, महंत गणेशा सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह, संत निहाल सिंह, भाई संतोख सिंह का नाम अमर है। पर आज साहित्य–सृजन की दृष्टि से कोई विशेष कार्य नहीं हो रहा।

निर्मल सम्प्रदाय के साहित्य में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि का चिन्तन भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुरूप ही अधिकांशतः किया गया है। इन्होंने

निर्गुण निराकार ब्रह्म का ही प्रतिपादन एवं उपास्य रूप में अनुमोदन किया है। एक वाक्य में भी कहा जा सकता है कि निर्गुणवाद की जो विशेषताएं हैं, सामान्यतः वे ही इनके काव्यों में पाई जाती हैं। पर वह गहन गम्भीर चिन्तन, मनन और मन्थन उनमें दिखाई नहीं पड़ता, जो इस काल खण्ड के भीतर आने वाले हिन्दी के भक्त कवियों की वाणी और सिक्ख समुदाय के महान् दस गुरुओं की वाणी में देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त निर्मले सन्त कवियों का एक विशुद्ध प्रचारक एवं उपदेशक का स्वरूप भी है जो स्वतः ही उभर कर सामने आ जाता है। वस्तुतः गुरुमत के प्रचार के लिए ही इस सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ था, अतः इस तथ्य को नितान्त स्वाभाविक ही कहा जाएगा।

निर्मल साहित्य में कहीं–कहीं रीतिकाल की प्रवृत्तियों का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। साहित्य शास्त्र के दोहा, छप्पय या अन्य अंगों का समग्र युग की मानसिकता का प्रभाव तो निस्संकोच रेखांकित कर ही सकते हैं।

निर्मले संतों के साहित्य में एक अन्य प्रवृत्ति के दर्शन भी होते हैं और वह है आदर्श पुरुषों का वर्णन। कवियों ने गुरुओं की महिमा तो गाई ही है, प्रमुख सन्तों और सिक्ख राजाओं–महाराजाओं का यशोगान भी किया है। पर ध्यातव्य तथ्य यह है कि रीतिकाल या आदिकाल के हिन्दी कवियों के समान धन–यश या लौकिक स्तर पर कुछ पाने के लालच से ही नहीं किया गया, बल्कि विशुद्ध श्रद्धा भक्ति और विशुद्ध सम्मान के भाव से ही किया गया है।

इन प्रमुख प्रवृत्तियों और विशेषताओं के अतिरिक्त हम निर्मल सम्प्रदाय की एक अन्य विशिष्ट प्रवृत्ति यह रेखांकित कर सकते हैं कि इन्होंने सिक्खमत, सिक्ख गुरुओं आदि का इतिहास लिखने का सफल प्रयास तो किया ही, सन्तों और सिक्ख राज्य के सम्बद्ध लोगों को सम्पूर्ण इतिहास भी काव्यमय भाषा में ही सही, सम्पूर्ण सफलता के साथ लिपिबद्ध किया। भारत में जो इतिहास लेखन की ओर ध्यान न देने की प्रवृत्ति रही है, ये लोग उसका पूर्णतया अपवाद कहे जा सकते हैं। यही कारण है कि भारत में जहां प्राचीन राजाओं, कवियों, साहित्यकारों का जन्म–मरण अज्ञात एवं विवादस्पद हैं।

वहां सिक्ख सम्प्रदाय और उससे सम्बद्ध मतों, मतावलम्बियों राज्यों आदि का सम्पूर्ण इतिहास क्रमबद्ध रूप से जाना पढ़ा जा सकता है। हमारे विचार से निर्मल सम्प्रदाय के उपलब्ध लिपिबद्ध साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही स्वीकार की जानी चाहिए।

सम्प्रदाय–विशेष से सम्बद्ध होते हुए भी इनके साहित्य में किसी भी प्रकार की संकीर्णता या खण्डन मण्डन के दर्शन नहीं होते। सभी सन्त और कवि सार्वभौम धरातल पर रहकर अध्यात्म चर्चा और स्वमत का प्रचार–प्रसार करने में ही संलग्न रहे हैं।

निर्मले संतों का अभिव्यक्ति पक्ष सीधा, सपाट रहते हुए भी निश्चय ही काव्यमय है और दार्शनिक बोझिलता वहां नहीं है। भावों, विचारों के लिए बीच–बीच में हम कवियों के गद्य (वार्त्तिक) का सहारा लेते हुए भी देख सकते हैं। सभी ने परम्परागत छन्दों को अपनाया है। अनायास रूप से आ गए अलंकारों का विधान भी वहां देखा जा सकता है। कवियों ने मुख्यतः युग की साहित्यिक भाषा ब्रज को ही अपनाया है पर उस पर पंजाबी भाषा की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है। संस्कृत के तत्सम शब्द तो पाए ही जाते हैं, अरबी–फारसी के प्रचिलत शब्दों से भी गुरेज़ नहीं किया गया। कहीं कहीं विशुद्ध पंजाबी भाषा का प्रयोग भी देखा जा सकता है।

निर्मले संतों के द्वारा प्रस्तुत की गई वेदांत दर्शन तथा वैराग्य सम्बन्धी ग्रन्थों की टीकाएं भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। वहां इनके भाषा प्रयोगों की सहजता विशेष दर्शनीय एवं उल्लेखनीय है। क्योंकि यह लोग जन–जन तक अपनी बात पहुँचाना चाहते थे। अतः इनके काव्यों के भाषा–शैली शिल्प आदि का मूल्यांकन करते समय इस तथ्य को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए।

निर्मल सन्तों की चिन्तन एवं उपासना पद्धति

निर्मलों के संस्कृत–प्रेम तथा संस्कृत–ग्रन्थों के पारायण से उनकी चिन्तन एवं उपासना पद्धति में सहज ही विशिष्टता आ गई है, जो उन्हें खालसा/सिक्खमत से पृथक कर देती है:–

1 निर्मल संत दस गुरुओं और श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को अपना इष्ट मानते हैं। लेकिन इसके साथ साथ प्रत्येक निर्मल संत उस महापुरुष को भी अपना देहधारी गुरु मानते हैं जिस से वह निर्मल पंथ में दीक्षित होता है। ऐसा गुरु आमतौर पर उस डेरे का महंत होता है।

2 निर्मले संतों में गुरु–शिष्य की परम्परा भी चलती है और वे एक दूसरे को गुरु भाई कहते हैं। गुरु के देहावसान के पश्चात् उसकी गद्दी बड़े शिष्य अथवा अयोग्य होने पर किसी अन्य शिष्य को दी जाती है।

3 डेरे के महंत को सभी मत्था टेकते हैं। डेरे की सम्पत्ति का अधिकारी उस डेरे का महंत होता है।

4 निर्मल–सन्त वेदों और अन्य धर्म शास्त्रों का आदर करते हैं। वेदों का मूल तत्त्व वेदान्त (अद्वैतवाद) मानते हैं। वे गुरु वाणी की व्याख्या करते समय इन शास्त्रों को प्रमाण स्वरुप उद्घृत करते हैं।

5 गुरुवाणी किसी भी शास्त्र का निषेध नहीं करती अपितु वास्तविकता बताती है।

6 गुरुवाणी के साथ–साथ वे पुराण आदि शास्त्रों का भी पारायण करते हैं।

7 निर्मल संत राम, कृष्ण आदि अवतारों को क्रमशः त्रेता एवं द्वापर युग का अवतार मानते हैं और कलियुग में गुरुनानक देव जी को अवतार मानते हैं।

8 प्रातः और सायं धूप दीप आदि से गुरु जी की पूजा और आरती करते हैं। गुरुद्वारे एवं पूज्य महात्माओं की समाधि पर धूप–दीप करना व फूल चढ़ाना उचित समझते हैं।

9 नाम–जप और निष्काम सेवा की मुक्ति का प्रमुख साधन मानते हैं पर इसके साथ 'ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती' ऐसी भी उनकी आस्था है।

10 वे भगवे वस्त्र या सफेद वस्त्र धारण करते हैं।

11 निर्मल सन्त अन्य खालसा मतावलम्बियों की तरह अमृतपान भी करते हैं और वे सनातन धर्म की वेद–पुराण सम्मत रीति–नीति का त्याग भी नहीं करते।

प्रमुख निर्मल संत साहित्यकार

पंडित गुलाब सिंह

पंडित गुलाब सिंह निर्मल सम्प्रदाय के प्रथम साहित्यकार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। अब तक की खोज के अनुसार उनसे पूर्व किसी भी निर्मल संत की कोई कृति उपलब्ध नहीं होती।

इनका जन्म ज़िला लाहौर की तहसील चूनियां में स्थित सैखब नामक गांव में हुआ था। इन्होंने पंडित मानसिंह से शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने अपने शिक्षा गुरु की प्रशंसा में भी कई पद रचे। गुरु की प्रशंसा करते हुए इन्होंने 'प्रबोध चन्द्रोदय' में लिखा है–

''भारत भूम पुनीत पद, तपो ज्ञान अवतार।
मान सिंह गुरु को नमो तारण करूणा सार।।

(प्रबोध चन्द्रोदय नाटक 1/4)

अपनी रचनाओं में भी इन्होंने कई बार गुरु का स्मरण किया है। परन्तु उनके सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं। ऐसी मान्यता है कि पं० गुलाब सिंह जी कुछ समय तक काशीवास कर संस्कृत का अध्ययन करते रहे। इनकी रचनाओं में इनके गूढ़ संस्कृत ज्ञान का परिचय मिल जाता है। बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी पंडित गुलाब ने साहित्य को बहुरंगी रचनाएं प्रदान की। जिनका ब्यौरा इस प्रकार है–

भावरसामृत (1777ई०), मोक्षपंथ प्रकाश (1778 ई०), अध्यात्म रामायण (1782ई०), प्रबोध चन्द्रोदय नाटक (1789ई०)

'भावरसामृत' में कवि ने सगुण साकार राम–भक्ति को भावुक पदों में प्रतिष्ठापित किया है। यद्यपि सिद्धांत से इस रचना का विशेष सम्बन्ध नहीं, पर भक्ति रस–सिद्धांत की दृष्टि से भी इसका महत्त्व स्वीकारा जाता है। इसमें वैराग्य भाव के दर्शन भी होते हैं और भर्तृहरि के वैराग्यशतक का प्रभाव यत्र तत्र देखा जा सकता है। 'मोक्ष पंथ' नामक दूसरी रचना में भी

कवि ने बड़े ही प्रामाणिक ढ़ंग से भारतीय दर्शन शास्त्र का विवेचन किया जिसमें वेदान्त दर्शन की प्रायः सभी मान्यताएं इसमें आ गई हैं। उपनिषद् वाक्यों का यत्र तत्र प्रयोग इस रचना की प्रमुख विशेषता रेखांकित की जाती है। संरचनात्मक स्तर की भक्ति और दर्शन से सम्बन्धि होते हुए भी इस रचना में काव्यात्मक तत्त्वों के भरपूर दर्शन होते हैं।

'अध्यात्म रामायण', इनकी प्रौढ़तम कृति रची मानी जाती है। कवि का अद्वैत दृष्टि काव्यमय पर्यावरणों में ढलकर प्रसिद्ध राम कथा को भी एक दार्शनिक आयाम प्रदान करती है। श्री राम को प्रमाणित करना इस रचना का मूल उद्देश्य स्वीकारा जाता है। कवि ने अपनी भाषा में अनुवाद करते समय मूल ग्रंथ की आत्मा को और भी प्रभावी बना दिया है। यहां मूल और अनुवाद का एक–एक उदाहरण प्रस्तुत हैः

मूल– *''पुरारि गिरि संभूता श्री रामार्ण विसंगता।*
अध्यात्मराम गंगेति पुनाति भुवनत्रयम्।''

अनुवाद– *त्रिपुरारि गिर ते भई मिली राम निधिवार।*
अध्यात्म राम सुगंग यह तीन भुवन भलहार।।'

अ.रा.1 2.6

अर्थात्– 'अध्यात्म –रामायण रूपी गंगा की धारा ब्रह्म लोक, कैलाशगिरी व समस्त भूतल को पावन करती हुई रामरूपी सागर में समा जाती है।'

पंड़ित गुलाब सिंह की कविता में विरक्ति की आवश्यकता के कारण शान्त रस की प्रधानता है । वे रामभक्त होते हुए भी दार्शनिकता के स्तर पर अद्वैतवादी थे।

इन्हें छन्द–अलंकार शास्त्र का भी भरपूर ज्ञान था। भक्तिभाव की दृष्टि हम मध्ययुगीन राम–भक्ति–परम्परा में रखा जा सकता है। पर इनके राम दशरथ के राम न होकर कबीर आदि के समान सबसे रमण करने वाले परम तत्त्व ही हैं।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम

पण्डित तारा सिंह नरोत्तम बहुमुखी प्रतिभा के धनी, गम्भीर–अध्येता एवं प्रामाणिक व्याख्याता माने जाते हैं। निर्मले साहित्यकारों में इनका नाम प्रमुख रूप से सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनका जन्म् सन् 1822 ई० में गुरुदासपुर जिले के एक गांव में हुआ था। बचपन में ही आध्यात्मिक रुचियां जाग्रत हो जाने के कारण इन्होंने प्रसिद्ध संत गुलाब सिंह निर्मल से दीक्षा ग्रहण की थी। अध्ययन रुचि एवं प्रतिभा–सम्पन्न हो जाने के कारण शीघ्र ही इन्हें भाषा, वेदान्त–दर्शन, व्याकरण और पुराण, आदि विषयों का अधिकारी विद्वान स्वीकार किये जाने लगा। इस प्रकार मुनि अर्जुन सिंह ने इन्हें 'मान्यवर विद्यारत्न, साहित्य–वाचस्पति जैसे विशिष्ट विशेषणों से अलंकृत किया था। इनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर ही इन्हें निर्मल पंचायती अखाड़े का 'श्री महन्त' नियुक्त कर दिया गया।

साहित्यकार के रूप में इन्होंने व्याख्याएं, कोश और कर्मकाण्ड से सम्बन्धित रचनाएं प्रमुख रूप से प्रस्तुत की। इन्होंने 'गुरुवाणी–कोश', गुरुवाणी की साहित्यिक व्याख्या, और गुरुधामों के सजीव यात्रा–विवरण विशेष रूप से प्रस्तुत किए। इसी प्रकार इनका समूचा जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व गुरुमत और गुरुवाणी के लिए पूर्णतः समर्पित था। इनकी उपर्युक्त सभी प्रकार की कृतियों की संख्या चौदह से अधिक है उनके नाम और रचना–काव्य क्रमशः इस प्रकार हैं–

'मोक्ष पंथ की व्याख्या', सुरतरु कोश, गुरुमत निर्णय सागर, परीक्षा–प्रमाण, वाहिगुरु शब्दार्थ, अकाल मूरत प्रदर्शन. कालादि शब्दार्थ, गुरुवंश, तरु दर्पण, जपु हरिदास सोहिला, श्री गुरु तीर्थ संग्रह, गुरु टीका, गिरार्थ कोश एवं गुरु गिरार्थ कोश।

इन रचनाओं में वर्ण विषय गुरुवाणी की व्याख्या, गुरुमत दर्शन, गुरुग्रन्थ साहिब का शब्दकोश, सांख्य दर्शन वैष्णव भक्ति–वैराग्य–विवेक आदि से सम्बन्धित एक सफल गद्यकार के रूप में भी इनका विशेष महत्त्व स्वीकारा जाता है। उन जैसा परम श्रद्धालु व्यक्तित्व अन्यत्र सुलभ नहीं, जिसने अपना समूचा जीवन ही गुरुवाणी एवं गुरुमत के लिए समर्पित कर दिया हो।

ज्ञानीज्ञान सिंह

पंजाबी में सिक्ख इतिहास और उनकी परम्पराओं का लेखन करने वाले ज्ञानी ज्ञान सिंह का जन्म आज के जिला संगरूर में स्थित लौंगोंवाल नामक गांव में सन् 1822 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम भाग सिंह और माता का नाम श्रीमती देसां था। इनकी माता गुरुवाणी का नियमित पाठ किया करती थी और सिक्खी पर उनकी अटूट आस्था थी। बेटे ने माता से ही ये दोनों गुण प्राप्त किये। इन्होंने आरम्भिक शिक्षा ग्राम स्थित गुरुद्वारे में ही प्राप्त की। जब यह सुरीली आवाज़ में गुरुवाणी का पाठ करते, तो सुनने वाले आनंद विभारे हो जाया करते थे। अपने इसी गुण के कारण यह अपने मामा की सहायता से महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में पहुंचकर उन्हें ग्रन्थ साहब का पाठ सुनाने के कार्य पर नियुक्त हो गए। पांच–छः वर्ष वहां बिताने के बाद सन् 1841 में महाराजा कर्म सिंह के दरबार में पटियाला आ गए। यहां रहते हुए इन्होंने रियासतों की राज्य व्यवस्था का निकट से अनुभव किया। सन् 1845 के अन्त में सिक्खों के साथ अंग्रेजों की पहली लड़ाई के अवसर पर ज्ञानी ज्ञान सिंह पटियाला रियासत की उस सेना के साथ थे जो अंग्रेजों की सहायता कर रही थी।

सन् 1853 में रोहतक के समीप बांगरूओं ने जब बगावत की तो जींद के महाराज की सहायता के लिए आई रियासत पटियाला की सेनाओं के साथ इन्होंने भी बगावत को दबाने में भाग लिया। जांघ में गोली लगने के कारण यह कुछ दिन बीमार रहे और बाद में उन्हें सेना की नौकरी से मुक्त कर दिया गया।

इन्होंने देश के प्रमुख स्थानों का व्यापक भ्रमण किया। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अवसर पर पानीपत में गिरफ्तार होकर कुछ दिन जेल में रहे पर जल्दी ही सिक्ख पलटन की सहायता से छुटकारा पा गए। बाद में फिर लगभग सारे देश का भ्रमण करते हुए वापिस पंजाब आ गए। इन यात्राओं का इनके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। अनुभव भी बहुत हुए। **महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह माना जाता है कि निर्मले संतों के सम्पर्क**

में आकर यह निर्मले बन गए। यह पंडित तारा सिंह नरोत्तम को अपना शिक्षा–गुरु स्वीकारते हैं। अपने शिक्षा गुरु की प्रेरणा से ही इन्होंने सब से 'श्री गुरु पंथ प्रकाश' नामक इतिहास ग्रन्थ रचा। इसमें गुरु नानक देव के प्रकाट्य से लेकर अंग्रेज़ काल तक के सिक्खों के समूचे इतिहास को उकेरा गया है। इसमें इन्होंने विभिन्न सिक्ख सम्प्रदायों का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया। इस इतिहास की विशेषता यह है कि युगीन परम्परा के अनुसार यह पद्यों में रचा गया। इसकी भाषा ब्रज भाषा ही कही जा सकती है।

इस इतिहास–लेखन में कल्पनाशीलता और अलंकरण की सहज प्रकृति भी दर्शन होते हैं। कहा जा सकता है कि इतिहासकार होते हुए भी ज्ञानी ज्ञान सिंह प्रतिभा से सम्पन्न थे।

इन्होंने 'श्री गुरु पंथ प्रकाश' के अतिरिक्त सिक्ख–इतिहास से सम्बंधित और पुस्तकें भी लिखी थी। उनके नाम हैं–निर्मल पंथ प्रदीपिका, तवारीख–खालसा, गुरुधाम संग्रह, तवारीख अमृतसर, तवारीख लाहौर, रिप्रदमन प्रकाश, सूरजप्रकाश वारतक आदि। इनमें से पहली दो विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इनकी 'निर्मल पंथ प्रदीपिका' निर्मल–संप्रदाय का इतिहास लिखा गया है। जबकि दूसरी 'तवारीख गुरु खालसा' में गुरुओं के इतिहास के साथ बन्दा बैरागी, राज खालसा दूसरी ओर सिक्ख मिसलों का इतिहास भी दिया गया है। महाराजा रणजीत सिंह तथा अन्य सिक्ख राजाओं का वर्णन भी इसमें आ गया है। अन्तिम रचना 'सूरज प्रकाश वारतक' तीन भागों में पहली बार सन् 1897 ई० में प्रकाशित हुई थी। यह महाराजा रणजीत सिंह के काल से लेकर ननकाणा साहिब के काल तक जीवित रहे। इनका स्वर्गवास सन् 1921 में हुआ। अपने लम्बे जीवन के अनुभवों के लिपिबद्ध करके निर्मल सम्प्रदाय और सिक्ख–संगत पर बहुत उपकार किया।

सन्त निहाल सिंह कवीन्द्र – 'महान कोश' नामक एक रचना में निहाल सिंह नामक जिन चार कवियों का उल्लेख मिलता है, उनमें से यह कौन थे, इस सम्बंध में अंतिम निर्णय के रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता।

इन्होंने स्वयं भी कहा है और विद्वान इतिहासकार भी मानते हैं कि यह महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन थे। यह स्वभाव–गुण से ही नहीं, बल्कि व्यक्तित्व से भी पूर्ण–धनी प्रतीत होते थे। स्पष्टवाद यह भावुक भी थे। उसी भावुकता के आवेश में इन्होंने अंग्रेज शासन की प्रशंसा भी अपनी कविताओं में कीं। तत्कालीन लड़ाई–झगड़ों से निर्द्वन्द्व रहकर इन्होंने अपनी कविता मात्र सच्चाई और अच्छाई को अपनाने की प्रेरणा दी है। इसी कारण मुख्य रूप से इन्हें भक्तकवि स्वीकारा जाता है। भक्त होते हुए भी यह कवि धर्म के प्रति हमेशा सजग रहें हैं।

19 वीं सदी का समय इसके अस्तित्व एवं रचना का काल माना गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रमुख कवि घनानंद की परम्परा को ही संत निहाल सिंह कवीन्द्र ने अुनसरण किया। ऐसा निर्मल सम्प्रदाय के इतिहासकार भी मुक्त भाव से स्वीकार करते हैं।

इनकी निम्नलिखित रचनाएं स्वीकार की गई हैं–1. कवीन्द्र प्रकाश, 2. भव सागर–सेतु, 3. श्री दोहरा भेदावली, 4 वेदान्ती बारामाह, 5 श्री सुधासरी सतक् 6. चीका, 7 छप्पय भेदावली 8. कवीन्द्र कवितावली 9 बोधियां वेदान्ती 10. षट्शास्त्र को सार 11. महावाक प्रकाश 12. निरपक्ष वाक

यह तथ्य विशेष ध्यातव्य है कि इन्होंने 'निहालसिंह' के अतिरिक्त अपने लिए 'खुशी मिग्रटाग' और 'सन्त खुशीसिंह' जैसे नामों का भी प्रयोग किया है। ऊपर दी गई रचनाओं में से 'महाकाव्य प्रकाश' इनको खुशी म्रिगराम नाम से और 'निरपक्ष वाक' इनके सन्त खुशीसिंह के नाम से प्रकाशित हुई। कुछ लोग 'षट्शाला को सारग्रन्थ' इनकी रचना नहीं भी स्वीकार करते हैं, इसे किसी कवि गुरबख्श सिंह द्वारा रचित माना जाता है। इनकी कविता में अध्यात्मवाद और वेदान्त–दर्शन का समन्वय मिलता है। भावना रचना की कमी नहीं। कवि के लिए अपेक्षित कल्पना शक्ति का भी अभाव नहीं दिखाई देता। निर्मल सम्प्रदाय से सम्बन्धित होने के कारण गुरु सिक्खी से भी बाकी प्रभावित अवश्य हैं।

परम्परागत अच्छी कविता के सभी गुण इनमें देखे जा सकते हैं इन्होंने छंदों की व्याख्या वेदान्त सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण आदि के लिए ब्रजभाषा संयत गद्य का भी सन्तुलित प्रयोग किया है।

भाई संतोष सिंह –हरियाणा के ब्रजकवियों में भाई संतोष सिंह को हरियाणा का तुलसीदास कहा जाता है। इनके पिता अम्बाला के 'बूड़िया' गाँव के मूल निवासी तथा धर्म प्रिय व्यक्ति थे। भाई संतोष सिंह ने 15 वर्ष तक अमृतसर में रहकर सिक्ख गुरुओं के बारे में विशद अध्ययन किया। संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिये वे काशी भी गये।

बूड़िया में भाई संतोष सिंह ने गुरु–कथा कहने का धर्म कार्य आरम्भ किया इस समय वे लगभग 25–26 वर्ष के युवक थे और अच्छे कवि थे। भाई संतोष सिंह ने यहीं अपने गाँव रहकर 'नामकोश' (अमरकोश का भाषानुवाद) तथा 'गुरु नानक प्रकाश' ग्रन्थों की रचना की।

इस बीच उनका निर्मले साधुओं से घनिष्ठ सम्पर्क होता रहा। भाई संतोष सिंह क्रान्तिकारी विचारों के व्यक्ति थे। रुढ़ियों के विरोधी थे। उन्होंने अपना रुढ़ि विरोध अपने विवाह के संदर्भ में पूरे दमखम से दिखाया। उन्होंने पारिवारिक परम्पराओं का उल्लंघन करके जगाधरी के रोहिल्ला परिवार की किशोरी राम कौर से विवाह कर लिया।

भाई संतोष सिंह के ग्रन्थ 'गुरु नानक प्रकाश' तथा यात्राओं ने उन्हें चर्चित और लोकप्रिय बना दिया। उनकी कवि शक्ति की गूंज पटियाला नरेश महाराजा कर्म सिंह के कान में पड़ी। महाराजा कर्म सिंह धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने इन्हें दरबारी कवि बनाया और निवास सहित सवारी के लिये हाथी दिया।

पटियाला में दो वर्ष साहित्य साधना करने के बाद इन्हें कैथल के महाराजा भाई उदय सिंह ने अपने राज दरबार में सम्मान सहित बुलाया और उनका उचित प्रबन्ध किया। यहां भी इनकी काव्य प्रतिभा के लिये अच्छा साहित्यिक वातावरण मिला। यहीं रहकर इन्होंने 'वाल्मीकि रामायण – भाषा' की रचना की। यहीं इन्होंने 'श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ' लिखना शुरू किया। यहीं इनकी

सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें दसों गुरुओं के जीवन चरित्र का इतिहास ब्रज भाषा में वर्णित है। यह रामचरितमानस की तरह चौपाई शैली में है।

'श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ' हिन्दू–सिक्ख संस्कृति का 'सांझा कोश' माना जाता है। भाषा विभाग पंजाब ने इसे आठ मोटी मोटी जिल्दों में छापा है। इसकी कुल पृष्ठ संख्या 4980 है। इस ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि भाई संतोष सिंह का छंद शास्त्र पर भी अच्छा अधिकार था। इनकी ब्रजभाषा पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट है। कहीं कहीं इनकी ब्रजभाषा खड़ी बोली को भी छूती है।

आपका देहांत संवत् 1980 वि० को कैथल में हुआ।

संत गुलाब सिंह निर्मल कृत 'अध्यात्म–रामायण'

संत गुलाब सिंह निर्मल–एक परिचय

परम विरक्त, कवि शिरोमणि, निर्मल संत पण्डित गुलाब सिंह का जन्म एक जाट परिवार में पिता जगराय एवं माता गौरी के घर हुआ था। उन्होंने अपनी कृति 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' में स्वयं लिखा है–

गौरी जननी लोक में राया जनक महान्
गुलाब सिंघ सुत ताहि के नाटक कीन बखान।1

बहिर्साक्ष्यों ने भी उपर्युक्त मत की पुष्टि की है। 'ए हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर' में डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने, महान् कोश में भाई काह्न सिंह ने एवं 'गुरुमुखी लिपि में 'हिन्दी काव्य' में डॉ० हर भजन सिंह ने तथा अन्य निर्मल इतिहासकारों ने पं० गुलाब सिंह का जन्म स्थान 'सेखव' ग्राम माना है।

गौरी राया मात पित
सेखव नगर उदार2

यह गाँव जिला लाहौर (पाकिस्तान) के समीप है। संत गुलाब सिंह का बाल्यकाल तो अपने गाँव में ही व्यतीत हुआ होगा लेकिन जैसा कि अन्तर्साक्ष्यों से प्रतीत होता है उनके संस्कार वैराग्य वृत्ति के थे। डॉ. ओमप्रकाश आनंद के अनुसार वे युवा होते ही पढ़ने के लिये काशी चले गये। काशी में पढ़कर जब पंजाब की ओर आ रहे थे तो रास्ते में कुरुक्षेत्र ठहर गये। उन दिनों कुरुक्षेत्र निर्मल संतों का अच्छा केन्द्र था। वहां उन्होंने निर्मल संत मानसिंह जी को अपना गुरु धारण किया और उन्हीं से दीक्षा ली।

पं० चन्द्रकान्त बाली के अनुसार, "गुलाब दास अभी अविवाहित ही थे कि वैराग्य भाव से प्रेरित होकर वे घर से निकल पड़े। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध सरोवर पर उन्होंने सन्त मान सिंह की शरण ग्रहण की। उन्हीं से दीक्षा ली। इधर माता–पिता ढूंढ़ते खोजते कुरुक्षेत्र आ पहुंचे। यद्यपि सहज दयालुतावश

1. प्र० च० नाटक–6.222
2. भाव रसामृत 125

मान सिंह तो उसे वापिस भेजने को उद्यत थे, पर गुलाब सिंह तैयार नहीं हुए। जब माता–पिता ने अपने इकलौते पुत्र द्वारा सम्भाव्य वंश–वल्लरी के विस्तार की दुहाई दी, तो गुलाब सिंह ने अपनी रचनाओं में माता–पिता के अमरत्व की इच्छा प्रकट कर सन्त भाव छोड़ने से इनकार कर दिया। सन्त ने अपना वचन पूरा किया।"[1] किसी भी निर्मल इतिहासकार ने उनकी ब्रह्मलीन होने की तिथि का निर्देश नहीं किया है।

व्यक्तित्व

संत गुलाब सिंह निर्मल सम्प्रदाय के पहले साहित्यकार थे। वे निर्मल सम्प्रदाय की सभाओं तथा गोष्ठियों में भाग लेते थे। शुभ पर्वों के अवसर पर हरिद्वार प्रयाग, त्रयम्बक, अमृतसर, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ स्थानों में निर्मल सम्प्रदाय के समागमों में उनकी उपस्थिति का वर्णन निर्मल इतिहासकारों ने किया है। वे सच्चे निर्मल साधु थे। वे वैराग्य और त्याग की मूर्ति थे। उन्होंने संसारिक ऐश्वर्य, सुखोपभोग की कामना व तृष्णा का नितांत परिहार कर लिया था। वे परम संतोषी महात्मा थे। इसके साथ साथ वे उच्च कोटि के कवि थे। उनकी सभी कृतियों का विषय अध्यात्म है। 'मोक्ष पंथ' तो वेदांत ग्रन्थ है। उन्होंने उस समय की लोकभाषा 'ब्रज भाषा' में लिखना उचित समझा। महान् प्रतिभा सम्पन्न होने पर भी उन्हें अपनी काव्य–कला व पांडित्य पर रंचक मात्र भी अभिमान नहीं था। वे कहते हैं कि मेरी रचना छोटे बालकों के टूटे फूटे बोल जैसी है लेकिन बड़े पुरुषों इन बोलों को सुनकर अवश्य प्रसन्न होंगे। गूढ़ दार्शनिक तत्वों को सरस काव्य में परिणत करने के काव्य कला नैपुण्य का श्रैय वे अपने गुरु एवं भगवत्कृपा को देते हैं।

उन्होंने लिखा है कि–

कहं वेदांत को अर्थ है, कहं मम बुद्धिविचार
रघुपति और गुरुपद कृपा, कीन्या कछु उचार

(मोक्षपंथ – 5–82)

पंडित गुलाब सिंह का व्यक्तित्व बहुमुखी था, वे एक प्रकाण्ड पंडित, दार्शिनक तत्त्ववेत्ता, कवि एवं समन्वयवादी रामोपासक भी थे। उन्होंने निर्मल

---

1. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 313

साहित्य को विशेष योगदान दिया। वे संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी के विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों – वेद, उपनिषद्, षट् दर्शन व पुराण आदि का विधिवत् पारायण किया था।

अध्यात्म–रामायण

पं० गुलाब सिंह निर्मल ने सन् 1782 ई० में 'अध्यात्म–रामायण' की रचना की। उन्होंने 14वीं, 15वीं शताब्दी में रचित संस्कृत की 'अध्यात्म–रामायण' को अपनी कृति का आधार बनाया। यहां यह बता देना आवश्यक है कि पं० गुलाब सिंह निर्मल कृत 'अध्यात्म–रामायण' से पूर्व हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' जैसी कृति की रचना हो चुकी थी। साथ ही आचार्य केशवदास अपनी 'रामचन्द्रिका' (1601 ई०) भी लिख चुके थे और गुरु गोबिन्द सिंह कृत 'रामावतार' की रचना (1701 ई०) हो चुकी थी।

प्रस्तावना खण्ड

मूलकथा 'रामावतरण' से पूर्व 'बाल काण्ड' के तीन अध्यायों में महाकवि गुलाब सिंह ने अपूर्व कौशल से पूर्वपीठिका का संयोजन किया है। इस प्रस्तावना को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। स्तुति व माहात्म्य खण्ड (प्रथम अध्याय) 2. राम ह्रदय (द्वितीय अध्याय), 3. रामावतार हेतु (तृतीयाध्याय)। प्रथम भाग में मंगलाचरण एवं माहात्म्य खण्ड आता है : स्मार्त वैष्णव पंच देवों (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणैश) की उपासना करते हैं। निर्मल पंथ गुरु मत एवं भारतीय संस्कृति में निष्ठा रखता है । यही कारण है कि पं० गुलाब सिंह ने ग्रन्थ के आरम्भ में समन्वयवादी दृष्टिकोण से विघ्नों की शन्ति के लिये 'ओं सति गुर प्रसादि', 'ओं स्री गणेसाय नमः' का स्मरण किया है। उन्होंने मंगलाचरण में अपने ढंग से पंचदेवों (सरस्वती, गणेश, श्रीराम, गुरु नानक देव, गुरु गोबिन्द सिंह), का स्तवन प्रथम पांच छन्दों में किया है। तथा ग्रन्थ के अंत में दस गुरुओं की वंदना की है।

स्तुति व माहात्म्य खण्ड में पूर्व पीठिका के रूप में युगीन परिस्थितियों (कलियुग का वर्णन) यथार्थ एवं सटीक है। लोग असत्यवादी, पाप निरत,

पर–अपवादरत, दुराचारी, परद्रव्याभिलाषी, परनारी में आसक्त, माता–पिता की सेवा से विमुख, कामुक, वर्णाश्रम धर्म से पतित हो जायेंगे। शासक वर्ग प्रजा का पालन नहीं करेगा। वह केवल दण्डनीति का आश्रय लेगा, नारियां भी भ्रष्ट होंगी, वे पति का त्याग एवं सास से द्रोह करेंगी।[1]

अध्यात्म रामायण का वस्तु–विन्यास

पं० गुलाब सिंह निर्मल ने आदि कवि वाल्मीकि से चली आ रही परम्परा का ही वहन किया है। समस्त ग्रन्थ को सात काण्डों में बाँटा गया है। बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुंदर काण्ड, युद्ध काण्ड एवं उत्तर काण्ड।

यहां यह संकेत कर देना आवश्यक होगा कि वाल्मीकि कृत वर्तमान रामायण के बालकाण्ड एवं उत्तर काण्ड को मनीषि प्रक्षिप्त मानते हैं। इसमें अवतार सम्बन्धी सामग्री का बाहुल्य है। पं० गुलाब सिंह ने 14 वीं अथवा 15 वीं शताब्दी ई० में रचित 'अध्यात्म–रामायण' को ही अपनी कृति का आधार ग्रन्थ बनाया हैं। 'अध्यात्म–रामायण' में प्रायः सर्वत्र भगवान् श्री रामचन्द्र के ईश्वरत्व का वर्णन आता है। वाल्मीकि रामायण में एक ऐसा नहीं होता।

कथा का एक उदाहरण देख लिया जाये। राम–परशुराम भेंट। गोस्वामी तुलसीदास ने राम विवाह से पूर्व परशुराम को लाकर विघ्न डालते हुये दिखाया है। विवाह के पहले की यह योजना काव्य की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। विघ्न आने के बाद प्राप्त की हुई वस्तु मूल्य बढ़ जाता है। पं० गुलाब सिंह निर्मल ने राम–परशुराम भेंट विवाह के उपरान्त मिथिला से तीन योजन दूर जाने पर दिखाई है।

इसका आधार भी संस्कृत की कृति 'अध्यात्म–रामायण' ही है। मिथिला से तीन योजन दूर जाने पर राजा दशरथ देखते हैं। वायु बड़ी तेज बह रही है। आँखों में धूल पड़ रही है। देखकर राजा डर गये। उन्होंने वसिष्ठ से पूछा कि यह क्या हो रहा है महाराज बाले–इन सब अपशुकनों उपद्रवों से मालूम

1. अध्यात्म–रामायण 1.1.18–25

पड़ता है कि कोई भय आने वाला है। लेकिन फिर तुम को अभय हो जायेगा। क्योंकि हरिण तुम्हें दाहिने करके जा रहे हैं यह शुभ को सूचित करते हैं।[1]

पं० गुलाब सिंह निर्मल कृत 'अध्यात्म–रामायण' का उत्तर काण्ड भी संस्कृत के अध्यात्म–रामायण के अनुकूल ही है। राम द्वारा सीता के परित्याग, वाल्मीकि आश्रम में सीता के दो पुत्रों के जन्म, अंत में सीता का पृथ्वी प्रवेश और राम का महाप्रयाण आदि सभी घटनायें संस्कृत की 'अध्यात्म–रामायण' के आधार पर ही वर्णित हुई हैं।

वक्ता–श्रोता की परम्परा और संवाद शैली

यहां केवल संवाद शैली के वैशिष्ट्य को देखना है। मानस में मूलतः दो ही तत्त्व निहित हैं–एक है प्रश्न और दूसरा उसी का उत्तर। यह प्रश्न केवल श्रोताओं का ही हो ऐसी बात नहीं। यह तो प्रत्येक व्यक्ति का प्रश्न है जिसका समाधान मानस की संवाद–शैली में इतने कलात्मक एवं प्रभावशाली ढंग से किया गया है। कथा–एक ही है–लेकिन चार वक्ता और चार श्रोता। देव वर्ग में आदिदेव महादेव वक्ता है और आदि शक्ति पार्वती श्रोक्ता। आदिभक्त काकभुशुंडि वक्ता हैं और विष्णु के वाहन गरुड़ श्रोता है। इसी प्रकार परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य जी वक्ता हैं और भारद्वाज ऋषि श्रोता और चौथे स्वयं तुलसीदास वक्ता हैं और सज्जन गण श्रोता हैं।

पंडित गुलाब सिंहः वक्ता–श्रोता परम्परा

(1) वक्ता ब्रह्मा देववर्ग के हैं तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। (2) वक्ता शिव साक्षात् भगवान् हैं और श्रोता आदि शक्ति पार्वती हैं। (3) वक्ता सूत और ऋषिगण श्रोता हैं, (4) कवि (मानव) वक्ता और श्रोता सज्जन हैं। ब्रह्मा–नारद का संवाद ब्रह्म (सत्य) लोक में, शिव–पार्वती का कैलाश गिरि में, सूत व मुनिगण का संवाद अरण्य प्रान्त में कवि–सज्जन वृन्द का संवाद 'पावन स्थान (ग्राम–नगरों) पर होता है। इस तरह राम कथा की व्यापकता उद्घोषित की है। 'अध्यात्म–रामायण' रूपी गंगा की धारा

1. देखिये अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड सप्तम सर्ग परशुराम भेंट 7–14

ब्रह्म लोक, कैलाश गिरि व समस्त भूतल को पावन करती हुई राम रूपी सागर में समा जाती हैं :–

त्रिपुरारि गिर ते भई मिलि राम निधि वार ।।
अध्यात्म राम सुगंग यह तीन भवन मलहार ।।1

कविवर गुलाब सिंह कथा–प्रसंगों का चयन, संकोचन और विस्तार किया है। उन्होंने अनावश्यक प्रसंगों तथा पुनरावृत्ति से बचने की चेष्टा की है। कवि महोदय ने कथानक के आरोह–प्रसंगों में व्यास शैली तथा अवरोह में समास शैली को अपनाया है। इस तरह उनका वस्तु–विन्यास कौशल सराहनीय है। उन्होंने सभी प्रासंगिक कथाओं को रामभक्ति एवं अध्यात्म में पर्यवसित करके मूल कथा से जोड़ दिया है। इस संयोजन में उन्होंने मध्यम–मार्ग अपनाया है अर्थात् न तो आदि कवि वाल्मीकि की तरह प्रासंगिक कथाओं को अनावश्यक विस्तार दिया है, और न ही वे गोस्वामी तुलसीदास की तरह उनका संकेत देकर आगे बढ़ गये हैं। प्रासंगिक कथाओं को संक्षिप्त रूप में देकर जहां एक और वे सम्बद्धता से दूर नहीं हटते, वहां पाठकों की जिज्ञासा की पूर्ति भी करते हैं। कविवर गुलाब सिंह ने मार्मिक स्थलों के चित्रण द्वारा कथानक को सजीव, सरस एवं ब्रह्म एवं ग्राह्य बना दिया है।

पात्र–चित्रण

वाल्मीकि–रामायण की कथा को आधार बनाकर उसके सहारे–सहारे रामभक्ति एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या के लिये 'अध्यात्म रामायण' (संस्कृत) की रचना की गई है। संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' में राम के ब्रह्मत्व के प्रतिपादन तथा दार्शनिक मान्यताओं के प्रतिपादन पर लेखक की दृष्टि रही है। वहां कथानक में आवश्यकता अनुसार परिर्वतन किया गया है तथा पात्रों की चरित्र रेखाओं में भी नवीनता का समावेश किया गया है, ब्रह्मत्व के प्रतिपादन के परिणाम स्वरूप राम की दुर्बलताओं को उनके चरित्र से निकाल दिया है, यहां तक कि रावण को भी स्त्री अपहर्ता से उठा कर राम का भक्त बना दिया है (संस्कृत अध्यात्म रामायण 3.5. 59–60)

---

1. अध्यात्म रामायण 1.2.6

संत गुलाब सिंह कृत 'अध्यात्म रामायण' में भी अध्यात्म एवं भक्ति के दृष्टिकोण के कारण पात्रों के रूप परिवर्तित हो गये हैं। उनकी कालिमा धुल गई है और वे एक आदर्श रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किये गये हैं। जैसे मन्थरा तथा कैकेयी ईर्ष्यालु नहीं रही, वे देव–योजना से प्रेरित हैं। विभीषण भ्रातृ–द्रोही नहीं अपितु राम भक्त है, रावण भी राममय होने के लिय विरोधी (भक्ति) का मार्ग अपनाता है। ग्रन्थ के प्रतिपाद्य के अनुरूप राम आत्मा हैं, सभी वर्गों के पात्रों को राम के आत्म रूप का बोध होता है और वे शुद्ध रूप में अवस्थित हो जाते हैं, सभी राममय हो जाते हैं। यहां यह बता देना आवश्यक है कि पं० गुलाब सिंह कृत 'अध्यात्म रामायण' से पूर्व राम–कथा की एक लंबी परम्परा चली आ रही थी। संस्कृत में 'वाल्मीकि रामायण' प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समस्त राम–काव्यों की प्रेरणा–स्रोत रही है। फिर बौद्धों और जैनियों में भी इसकी एक परम्परा चली।

1574 ई० में गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की। 1601ई० में आचार्य केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' लिखी और सन् 1700 ई० में गुरु गोबिन्द सिंह ने 'रामावतार' की रचना की। इसी बीच लगभग 1760 ई० से 1832 ई० के बीच राम काव्यधारा में रसिक भक्ति की परम्परा भी चली। पं० गुलाब सिंह को यह सब एक विरासत के रूप में मिला।

एक लम्बी पौराणिक परम्परा विरासत में मिलने पर भी 'अध्यात्म रामायण' के रचयिता ने राम का चरित्र जिस ढंग से प्रस्तुत किया वह तत्कालीन समाज की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। 'वाल्मीकि–रामायण' (600ई० पू० से 400 ई० पू०) से 'अध्यात्म–रामायण' (1782 ई०) तक पहुँचते एक लम्बी यात्रा के पश्चात् राम का चरित्र बहुत परिवर्तित हो चुका था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'मानस' के राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य की पराकाष्ठा है किन्तु इसमें भी प्रधानता शील की है।

वाल्मीकि ने राम के शक्तिसूचक सौन्दर्य को ही प्रधानता दी है। परन्तु तुलसी ने राम के शक्ति सूचक सौन्दर्य और सौकुमार्य सूचक सौन्दर्य में

संतुलन रखा है। कहीं कहीं तुलसी ने द्वितीय पक्ष की प्रधानता दिखाई है। वाल्मीकि के राम की शक्ति उनके सौन्दर्य से अधिक उनके भुलबल में है, मानस के राम की शक्ति भुजबल से अधिक उनकी अमोल चितवन, शीतल दृष्टि में हैं। वाल्मीकि के राम के शक्ति प्रधान सौन्दर्य से तुलसी के राम की सौन्दर्य प्रधान शक्ति कम शक्तिशाली नहीं सिद्ध हुई है।[1]

कवि गुलाब सिंह ने राम का चित्रण करते समय, उन्हें अध्यात्मवादी सूत्र से अपने वशवर्ती रखा है। 'अध्यात्म–रामायण' के राम शील, शक्ति और सौन्दर्य के आगार हैं। वे तीनों लोकों का सृजन व संहार करने में समर्थ हैं। उनके ओज, तेज तथा शक्ति के आगे सब नतमस्तक हैं।

बाल्यावस्था में वे ऐ बाण से ताड़का तथा सुबाहु का अन्त करते हैं। और मारीच को समुद्र पार फेंक देते हैं। जनक–सभा में वे शिव–धनुष को वाम–हस्त से ही उठा देते हैं, विष्णु–धनुष में गुणारोपित कर परशुराम के अहं को चूर्ण करते हैं। वे अकेले ही खर, दूषण, त्रिशरा आदि बड़े पराक्रमी राक्षसों को कुछ ही क्षणों में मार डालते है। मदोन्मत्त एवं बलवान् बालि को एक शर से धराशायी कर देते हैं। त्रिलोकी को उत्पीड़ित करने वाले, महान् योद्धा व कृतान्तसम कुम्भकर्ण रावणादि राक्षसों को पराजित करने से राम की शक्ति सुप्रतिष्ठित होती है।

राम का सौंदर्य अपूर्व है। उनके सुकुमार व कोमल रूप का चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है। नख शिख प्रणाली पर चतुर्भुज रूप में राम का सौन्दर्य मन को लुभाने वाला है। पुण्योदय से उनके दर्शन कौशल्या व अहल्या को होते है। मानुष रूप में धनुर्धारी राम के सौन्दर्य पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर किये जा सकते हैं।

राम आदर्श सखा हैं। अपने मित्र सुग्रीव का करुणामय जीवन वृत्तान्त सुन कर विह्वल हो जाते हैं। राम स्वयं निर्वासित एवं पत्नीविरह से पीड़ित हैं। वे बालि द्वारा सुग्रीव के निष्कासन और पत्नीहरण के दुख की अनुभूति करते हैं; उनकी आंखों में आंसू आ जाते हैं, वे वचन देते हैं, "तव वैरी को मारिहों

1. वाल्मीकि और तुलसी – साहित्यिक मूल्यांकन श्रीराम प्रकाश अग्रवाल पृ० 125

जाहि हरी तव नारि।।[1] वस्तुतः बालि–वध की संगति को इस परिपेक्ष्य में देखना चाहिये। इस संदर्भ में राम का कथन सार–गर्भित हैः–

सु धरम गौपता सदा सुलोक माहि मै चरों।।
करे कुदंड साइकं संभार आप न धरों।।
अधरम कारणं हनो सु धरम पाल हों सदा।।
विलंब न सहो घरी अधरम पेख हो यदा।। 1

'अधर्म का नाश' और 'धर्म की स्थापना' के लिये अवतरित राम 'भक्त–वत्सल है, शरणागत व दीन–हीनों की सुरक्षा उनका प्रथम धर्म है।' शरभंग ऋषि के आश्रम में जब राम मुनियों के साथ आते हैं, उन्हें रास्ते में ऋषि मुनियों की खोपड़ियों का ढेर दिखाई देता है। राम मुनयिों को आश्वस्त करने के लिये प्रतिज्ञा करते हैं।

"राखस जे भुवमंडल माहि।। सभ मारो मुनि डरो सुनाहि।।"2

धर्म–परायण राम का आक्रोश भी वात्सल्य प्रेरित है। वे असहाय, पीड़ित, व त्रस्त ऋषि मुनियों की दुर्दशा से द्रवित हैं। दूसरी ओर दुष्टता, अत्याचार, अधर्म का नाश कर दुष्ट अत्याचारी व अधर्मी के कालुष्य का निवारण कर उसे सद्गति प्रदान करते हैं। राम सब को मुक्ति देने वाले हैं,

"मुकति कलप द्रुम राम उदारा।। उमा फिरै वै विपन मझारा।।"3

समद्रष्टा राम कैसे किसी से विद्वेष कर सकते हैं? वे एकात्मवादी हैं, वे गुह (निषाद) को ही गले नहीं लगाते, शबरी (भीलनी) को भी आतिथ्य स्वीकार करते हैं, पशु–पक्षियों को स्नेह–दृष्टि से आध्यापित करते हैं।

पं० गुलाब सिंह निर्मल ने जिस अध्यात्म के सिद्धान्त को लेकर राम कथा एवं राम का चित्रण किया है वह वेदांत ने अनुरूप ही है। अतः हम कह सकते हैं। यदि वाल्मीकि के राम पुरुषोत्तम हैं तु रामचरितमानस के राम एक अलौकिक पुरुष हैं, भक्त वत्सल हैं। केशव की 'राम चन्द्रिका' के राम एक वैभवशाली सम्राट हैं, उनके चारों ओर सांसारिक वैभव बिखरा पड़ा है। गुरु

1. अध्यात्म रामायण 4/2/49
2. अध्यात्म रामायण 3/2/22
3. अध्यात्म रामायण 4/3/3

गोबिन्द सिंह जी कृत 'रामावतार' में राम के वीर रूप को प्रतिष्ठित करने का ही प्रयास सर्वत्र रहा हैं। पं० गुलाब सिंह कृत 'अध्यात्म–रामायण' का चित्रण तो वेदांत दृष्टि से ही प्रेरति हैं–

राम मूलतः आत्मा (ब्रह्म) हैं। वे निर्गुण, अज, अव्यय व अकर्ता है। वे माया आश्रित होकर सगुण एवं कर्ता प्रतीत होते हैं। उनके समस्त कार्य लीला मात्र हैं। अनासक्त और निष्काम होने के कारण अभिनय ही कहे जा सकते हैं।

राम एक आनंद सरूप। प्रक्रित परे पुनि पुरख अनूप।।
निज माया करि जग उपजाइ। बाहरि भीतर रह्यो समाइ।
है सभ अंतर आतम गूड़। नाहि पिखे तां को नर मूढ़।।
जिउं चुंबक जगलोह चलावै। तिउ बहु राम जगत भरमावै।
एह न जाने मूरख लोग। अवर अविद्या पावे सोक।।
जोति रूप रवि मै तम नाहि। तिउं अग्यान न राघव मांहि।
प्रकास रूप सूरय जग आही। दिन सु रात्रि तिह दोऊ नाही।।
तिउ अगिआन गिआन दो नाही। सुद्ध गिआन हरि राम सुभाही।
तांते परानंद है राम। तां मैं अहे न तम को नाम।।1

तात्पर्य यह कि राम का वासविक रूप परात्पर ब्रह्म का है, किन्तु उसने मनुष्य का शरीर धारण किया है। मूलतः वह सत्, चिद्, आनन्द (सच्चिदानन्द) है, किन्तु देव–काज के लिए, संसार में दानव–विलाश लीला की खातिर उस परम तत्त्व को तन धारण करना पड़ा है।

विशेष परिस्थितियों में राम के ब्रह्मत्व को स्मरण कराने वाले कथनों का आशय यही है कि पाठकों को राम के मूलतत्व (आत्मा) में कहीं संदेह न हो जाये। वस्तुतः राम के चरित्र का मूलाधार उनकी अध्यात्मनिष्ठा है। अतः वे अनासक्त हैं, स्थित प्रज्ञ हैं, सम रह कर सब व्यवहार करते हैं, वे शील, शक्ति व सौंदर्य सम्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनका आदर्शमय जीवन सर्वगुण–सम्पन्न है। उनके ऐसे नरत्व में ही नारायणत्व और ब्रह्मत्व की प्रत्यभिज्ञा होती है।

---

1. डॉ. मनमोहन सहगल हिन्दी रामकाव्य का सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 189

अध्यात्म रामायण में पं० गुलाब सिंह के अनुरूप है। यहां राम ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता माने गये हैं। सीता (मूल प्रकृति/योगमाया) उनसे अभिन्न, उनकी अनिर्वचनीय शक्ति है। उसी से संविलत होकर वे निर्गुण से सगुण ईश्वर होते है। वे अवतरित होते हैं। यह माया उत्कृष्ट उपाधि है, अतः नररूप में भी राम सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अकर्ता, शुद्ध व बुद्ध हैं। रज्जु में सर्प की तरह राम में नाम रूपात्मक जगत् की प्रतीति का मूल कारण अध्यास एवं अज्ञान है। जगत् मूलतः विवर्तमात्र है। जीव मूलतः ब्रह्म है। वह अज्ञान के कार्यभूत इन्द्रियां, मन बुद्धि व अहंकार आदि स्थूल व निकृष्ट उपाधि से संचालित है। अतः वह स्फटिकमणि में भासित लाल पुष्प तथा तप्तलोहपिण्ड की तरह अन्योन्याध्यास के कारण उन्हें अपने में आरोपित कर लेता है । जब वह अपने शुद्ध स्वरूप को जान लेता है, तो अज्ञान स्वरुप स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर रूपी उपाधियों को परित्याग कर ब्रह्म हो जाता है। यहां सभी वर्गों के पात्र (जीव) राम (ब्रह्म) के साक्षात्कार से राममय व जीवन्मुक्त होते हैं और देहपात के अनन्तर विदेहमुक्त हो जाते है। मुक्ति के साधन रूप में श्रवण, निदिध्यासन तथा समाधि का वर्णन हुआ है। प्रत्यक्ष उपदेश रूप होने के कारण 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश अनेक स्थलों पर मिलता है। 'रामगीता (उत्तरकाण्ड का पंचम अध्याय) में इसकी सम्यक् व्याख्या हुई है।

फिर भी यहां यह अवलोकनीय है कि पात्र पूर्णतः स्रष्टा के हाथ में कठपुतली की तरह नहीं हैं। उनका निजी व्यक्त्वि है। कवि ने पात्रों के चरित्र का लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों धरातल पर निर्वाह किया है।

रस व्यंजना

कविवर गुलाब सिंह राम भक्त एवं विरक्त साधु थे। राम उनके आराध्य एवं इष्टदेव है। कवि गुलाब सिंह धार्मिक स्थलों के महापारखी हैं। एक उदाहरण देखें

राम वनवास के लिए रथ में बैठ गये हैं– वे रथवान को चलने के लिए कह रहें हैं, राजा दशरथ उसे रुकने को कह रहे हैं। रथ चलता है, दशरथ पछाड़ खाकर गिरते हैं, किन्तु नगर निवासी रथ के साथ भाग खड़े होते हैं–यथा

रथ ठाढ़ करो, रथ ठाढ़ करो, इम भूपति आप सुमंत उचारे
सुचलाइ चलाइ सु राम कही रथ तांहि हके अतिसै हठ भारे
कुछ दूर गये हटि जो पुरते न्रिप खाइत वार गिरे भुव भारे
पुर बालक ब्रिद्ध युवादि जस तम तै रथ के पुनि संग सिधारे

अध्यात्म रामायण

अयोध्या काण्ड अ.5 उपरोक्त पंक्तियों में राम और पुरजनों के मोह वात्सल्य रस साकार हो उठा है। इसी प्रकार सीता का एक चित्र अवलोकनीय है। विरह ने राज रानी सीता को भिक्षुणी से मलिन बना दिया है। एक बेणी, मलिन वस्त्र, धरती शयन, उपवास से शरीर दुबला, कोई संरक्षक नहीं, फिर भी मुख से राम राम उचारती सीता–कितना हृदय स्पर्शी चित्र है। देखें–

एक बेणी दूसरी पर रही मलिन सु धार
भूमि सोइ सोचती मुख राम राम उचार
त्राता न कोई पावती उपवास दूबर देह
पिख ताहि को हनुमान भाख्यो जानकी है एह

(सुंदर काण्ड)

विरह की चोट इतनी मार्मिक है कि देखते ही, बिना पूछे हनुमान जानकी को पहचान जाते हैं। इस प्रकार कवि ने रौद्र रस, करुण रस, वात्सल्य रस आदि के सुंदर चित्र उतारते है।

प्रकृति चित्रण

कविवर गुलाब सिंह ने अपने अर्पूव कल्पना कौशल से प्राकृतिक घटा, सेना, नगर, विवाह एवं रूप आदि का आकर्षक वर्णन किया है, ये वर्णन संक्षिप्त हैं। पम्पासर का एक चित्र देखें

पंपा सरि के तट मैं गए
पेख सरोवर विसमै भए।
कोस प्रमाण अहे विसतारा।
जल अगाध अति ऊजल वारा
सुंदर कमल जहां अतिखिरे
कुमद अनेक प्रया विस्तरे।

भाषा शैली

मध्यकालीन पंजाब में ब्रज–भाषा में काव्य रचना की एक दीर्घ परम्परा रही है। पं० गुलाब सिंह 'अध्यात्म रामायण' ब्रज भाषा में है। इस समय (सन् 1782 ई०) के दिनों में पंजाब में जो साहित्य लिखा जा रहा था वह ब्रज भाषा में ही था।

प्रस्तुत कृति सरल, सरस व शुद्ध ब्रज भाषा में है। साथ में पंजाबी, अरबी व फारसी के अनेक प्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कविवर गुलाब सिंह ने भावानुरूप भाषा का प्रयोग किया है।

.उनकी भाषा अध्यात्म व भक्तिमय स्थलों में संगीतमय है, वीर रौद्ररस आदि के चित्रण में ओजस्वी हे, विवरणात्मक स्थलों में सरल, सहज व भावमय है।

उनकी कृति का एक विशिष्ट गुण अलंकार मयता है। सम्भवतः अंलकार रहित किसी एक पद को भी खोज निकालना कठिन है।

उन द्वार छन्दों का प्रयोग भी एक विविधता लिए हुए है। उन्होंने चौपाई, दोहा, कवित्त, सवैया, नराज आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष

राम–काव्य भारतीय साहित्य का एक समृद्ध अंग है। 'वाल्मीकि रामायण' इस समृद्ध काव्य परम्परा की आधारशिला है। 'वाल्मीकि रामायाण' की कथा को आधार बना कर उसके सहारे–सहारे रामभक्ति एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या के लिये 'अध्यात्म रामायण' की रचना की गई। गोस्वामी तुलसीदास ने 'वाल्मीकि रामायण' एवं संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' दोनों को आधार बना कर इसमें भक्ति का समावेश कर दिया। तुलसी के समकालीन आचार्य केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' (1601 ई०) की रचना द्वारा रामकाव्य परम्परा में एक अभिनव क्रान्ति उपस्थित की।

रामचरित मानस (1574 ई०) की रचना काल तक रामकथा इतने रूप धारण कर चुकी की कि उसे लेकर काव्य रचना करने वाले कवि के समक्ष इस कठिनाई का आना स्वाभाविक था कि वह उसका कौन सा रूप ग्रहण करे!

इस विशाल काव्य परम्परा से कविवर गुलाब सिंह निर्मल ने संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' को चुना क्योंकि यह कृति उनके जीवन आदर्श के अनुकूल थी। संत गुलाब सिंह एक सच्चे निर्मल साधु थे। वे परम अद्वैतवादी थे। उन्होंने जन जन में निहित ब्रह्म (आत्माराम) का साक्षत्कार किया था। राम के वे अनन्य उपासक थे। क्योंकि संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' उनके आदर्शों एवं विचारों के अनुकूल थी, इस लिये उनकी दृष्टि इसी कृति पर केन्द्रित हो गई। कविवर गुलाब सिंह ने अपनी कृति 'अध्यात्म रामायण' में इसी अद्वैत दृष्टि से सम्पूर्ण कथा को देखा है। इस में राम कथा दार्शनिक दृष्टिकोण से विवेचित है। राम का परब्रह्म सिद्ध करना इस रचना का उद्देश्य है। अतः पं० गुलाब सिंह जी ने मूल पुस्तक की इस केन्द्रिय दृष्टि को सम्मुख रखकर इसका अनुवाद किया है। उनका जीवन निर्मल मत के अनुरूप अध्यात्म से अनुप्राणित था। अपने उद्देश्य के अनुरूप उन्होंने रामकथा का चयन एवं चित्रण किया। इस प्रकार रामकाव्य परम्परा के विकास में संत गुलाब सिंह 'निर्मल' का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

गुरुमत और निर्मल सम्प्रदाय

गुरुनानक देव जी इस संसार में एक पूर्ण–पुरुष के रूप में अवतरित हुए थे। उनके जीवन का लक्ष्य था–हम सब को पूर्ण बनाना। हमारा, आपका इस प्रकार पथ प्रदर्शन करना कि हम अपने अन्दर छिपी हुई शक्ति को, सत्य को, ईश्वर को, ब्रह्म को पहचान सकें। इस आकार में से निराकार खोजें, इस अन्तर में से निरन्तर को अनुभव करें। दूसरे शब्दों में वे चाहते थे कि जिस ऊँचे शिखर पर वे स्वयं खड़े हैं, जिस पूर्णता पर वे स्वयं पहुँचे हुए हैं, उसी स्थान, उसी पूर्णता पर हमें और आपको भी ले जायें।

यह कार्य कोई एक दो पुरुषों के द्वारा संभव नहीं था। समस्त जाति का उठाना और उद्धार करना था, उस जाति को जो केवल मंत्रों के निस्सार जाप एवं पाठ पर ही संतुष्ट हुई बैठी थी, जिस जाति के पास केवल अंधविश्वासों के सिवाये कुछ नहीं रह गया था।

इसलिए गुरुनानक देव जी ने दस जामें (शरीर) धारण किये और दस गुरुओं के रूप में एक होकर अपने कार्य को पूरा किया। इस कार्य को करने में लगभग दो सौ वर्ष लग गये। परन्तु इस के बावजूद इन दो सौ वर्षों में गुरुमत के मूल नियम एवं सैद्धान्तिक तथ्य–आरम्भ से लेकर अंत तक वही रहे जो गुरुनानक देव जी ने दिए थे। इस दसों गुरुओं ने अपना रोल निभाया तथा इस कर्म की क्रियात्मक उन्नति में अपनी अपनी मोहर लगाई।

'गुरुमत' का शाब्दिक अर्थ है गुरु की सम्मति अथवा गुरु द्वारा प्रदर्शित पथ। गुरु आध्यात्मिकता का स्वामी है अतः उसकी राय, नसीयत और सम्मति अत्यंत महत्त्व रखती है । गुरुवाणी में इस सम्मति के लिये बार बार ताकीद की गई है।

गुरुमति लेहु तरहु भव दुतरु
मुकति भए सुखु पाइआ गुरु० ग्र० 1041

अर्थात् "गुरु के आदेशों पर चलते हुए दुस्तर संसार–सागर से पार होकर मुक्ति लाभ प्राप्त करो और परम सुख से जिओ।" गुरु रामदास जी ने

बिहागड़ा राग में कहा है कि गुरु की सम्मति के अनुसार चलने वाला कभी विचलित नहीं होता–

गुरुमति मनु ठहराईऐ मेरी जिंदुड़ीऐ
अनत न काहू डोले राम

गुरु० ग्र० 538

अर्थात् "हे मेरी सुंदर आत्मा! गुरु की शिक्षा का अनुसरण कर इस मन को टिकाना चाहिए क्योंकि गुरु के ज्ञान के द्वारा यह किसी तरफ भी आकर्षित नहीं होता।" गुरु अर्जुन देव जी ने भी 'सुखमनी' साहब में कहा है कि हे मूर्ख व्यक्ति! गुरु के मतानुसार चल क्योंकि भक्ति के बिना अनेक बुद्धिमान व्यक्ति संसार सागर में डूब गये हैं–यथा

गुर की मति तूं लेहि इआने
भगित बिना बहु डूबे सिआने

गुरु० ग्र० 288

अर्थात् हे मूर्ख! सत्गुरु की शिक्षा ले, बड़े चतुर व्यक्ति भी भक्ति के बिना विकारों में ही डूब जाते हैं। गुरुग्रन्थ साहिब गुरुमत का भण्ड़ार है। इसलिये गुरुग्रन्थ साहिब में दर्ज वाणी में बताए सभी सिद्धान्त समूचे रूप में गुरुमत कहलाते हैं। लेकिन कुछ विद्वान गुरुमत साहित्य की सीमा केवल गुरुग्रन्थ साहिब तक ही सीमित नहीं करते अपितु इसके साथ साथ अन्य अनेक रचनाओं यथा दशम्–ग्रन्थ, भाई गुरुदास जी की रचनाओं, भाई नन्दलाल की कृतियों एवं 'जनम सखियों' को भी गुरुमत के अन्तर्गत ही मानते हैं। 'गुरु' शब्द सिक्ख गुरुओं अथवा किसी समय और स्थान विशेष के क्षेत्रों का सूचक ही नहीं वरन् यह एक दिव्य ज्योति के परम कण का नाम है, जो निरन्तर ज्योतिर्मान रहती है और दिव्यवाणी के रुप में विभिन्न देश काल के जन मानस को प्रेरित करती एवं उनकी नियति का निर्देशन करती है। दूसरे शब्दों में गुरुमत साम्प्रदायिक, वर्गीय अथवा संकीर्ण नहीं है। इसमें युग युग से भारतीय संतों द्वारा निर्दिष्ट ईश्वरीय–ज्योति भी निहित है।

इस प्रकार गुरुमत भारतीय गुरुओं, संतों और महात्माओं के विचारों का सामंजस्य है अथवा परम् सत्य का लगभग समान अनुभव है। गुरुमत स्वयं

परमात्मा द्वारा प्रदीप्त वही शाश्वत लौ है और उसकी इच्छानुसार ही गुरुओं तथा संतों के माध्यम से इस को व्यक्त किया जाता है

गुरुमत एवं गुरु–दर्शन

गुरुमत और गुरु–दर्शन एक ही वस्तु है– समरूप हैं। दोनों का लक्ष्य मनुष्य को श्रेष्ठ बनने में सहायक होना है। गुरु दर्शन अनिवार्य तत्वों का उल्लेख करता है तथा गुरुमत शिष्यों की जीवन उन्नति का पथ निर्दिष्ट करता है। लेकिन यदि कोई गोता लगाने वाला चाहे कि गुरु ग्रन्थ में से दार्शनिक मतों को भीतर से बटोर कर लाना चाहे तो उसे निराशा ही होगी। गुरु साहित्य में शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से कोई व्यवस्थित अध्ययन उपलब्ध नहीं है।

यद्यपि गुरु ग्रंथ के संकलन से पूर्व भारतीय चिंतन जगत में वेदों, उपनिषदों, जैन और बौद्ध दृष्टिकोण सम्बन्धी ग्रन्थों छः शास्त्रों, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि स्म्प्रदायों की रचनाओं का प्रणयन हो चुका था।

गुरुग्रन्थ के वाणीकार मूलतः समन्यवादी थे, इस लिये वे उपर्युक्त समूचे चिंतन में से आंशिक सत्यों का संकलन कर मनुष्य को मानवता के अधिक निकट लाना चाहते थे।

गुरुग्रन्थ के वाणी कार संत थे, शास्त्रकार नहीं। उन्होंने जो कुछ लिखा वह रहस्य अनुभव पर आधारित अनुभूति है, इसलिये इसमें शुद्ध दर्शन नहीं अपितु जीवन दर्शन है। गुरु–दर्शन का मूल दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत अथवा एकेश्वर का सिद्धान्त है। इसकी विलक्षणता चिंतन की अपेक्षा स्वंय चिंतक पर बल देने में हैं। गुरुमत के बीज गुरु–दर्शन में ही हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। गुरुनानक विचारधारा में सभी नाम, हुक्म, कर्म, माया, जीव, ब्रह्म आदि का स्वरूप स्पष्ट है। वाणी में प्रत्येक अंग पर पर्याप्त दबाव डाला गया है। गुरुमत की नींव इसी पर सुनिर्मित दीख पड़ती है।

गुरुमत के सिद्धान्त

गुरुमत मनुष्य के लिए उच्चतम आदर्श मार्ग है। यह मानव को इसी लोक में अहम्–जगत से ईश्वरीय जगत में बदलकर पीड़ा से मुक्त करने पर बल देता है। अतः गुरुमत लक्ष्य सिद्धि के लिये कुछ अनिवार्य तत्वों की चर्चा करता है।

1. नाम स्मरण

गुरुवाणी में 'नामी' तक पहुँचने के लिए नाम स्मरण, श्रवण, मनन एवं अभ्यास पर अधिक बल दिया गया है। गुरु–ग्रंथ साहिब में – 'बिणु नावै नाहीं को थाउ' (जपुजी) कह कर नाम को समूचे जड़–चेतन जगत की नियन्त्रण–शक्ति माना है। यह संसार 'शब्द' की ही सृष्टि है। गुरुमत के अनुसार भीतर के नाम की पहचान एवं शब्द–श्रवण कर लेने वाला जीव तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसे स्थाई आनन्द मिलता है। यथा

तिनाँ अनंदु सदा सुखु है
जिना सचु नामु आधारु।

गु० ग्र० पृ० 36

अर्थात् 'जिन लोगों को सच्चे नाम का एक मात्र सहारा है, उन्हें सुख–स्वरूप परमात्मा के मिलन का परम आनंद प्राप्त होता है'

2 गुरु के हुक्म में चलना–

गुरुमत में गुरु की आवश्यकता पर बड़ा जोर दिया गया है। आध्यात्मिक पंथ पर कोई अनुभवी महापुरुष ही अनुभव करवा सकता है। उपनिषद्कार इस तथ्य के विषय में बड़ा स्पष्ट हैं।

श्रवण तु गुरोः पूर्व मनने तदन्तरम्
निदिध्यासन मित्येत्पूर्ण बोधस्य कारणम्

अर्थात् पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है जब पहले गुरु से सुने फिर मनन करे और उस के पश्चात् निदिध्यासन करे''

यह एक व्यावहारिक विद्या है, अतः गुरु द्वारा मार्ग प्रशस्त किये बिना इसका श्रवण, मनन अभ्यास कुछ भी संभव नहीं

बिनु सतिगुरु नामु न पाईऐ भाई
बिनु नामै भरमु न जाई
सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई
गुर आवणु जाणु रहाई

गु०ग्र० पृ० 635

अर्थात् परमात्मा का नाम गुरु के बिना नहीं मिल सकता और प्रभु के नाम के बिना मन की दुविधा दूर नहीं होती, जब मनुष्य गुरु की सेवा करता है तब आत्मिक आनंद प्राप्त करता है और अपना जन्म–मरण का चक्र समाप्त कर लेता है। गुरुमत में स्पष्ट कहा है कि जिस ब्रह्म को हम लाखों जन्मों का चक्र करने पर भी न पा सके थे उसको वह गुरु दिखा देता है, मिला देता है–

कहु नानक गुरि ब्रह्ममु दिखाइआ
मरता जाता नदरि न आइआ

गु० ग्र० पृ० 152

अर्थात् 'हे नानक' ! जिस मनुष्य को गुरु ने परमात्मा का दर्शन करा दिया उसे यह विश्वास हो जाता है कि सब जीवों में व्यापक परमात्मा कभी नहीं मरता।

3 सेवा

गुरुमत सेवा प्रधान मार्ग है और सिक्ख को सेवा करने के लिये बार बार आदेश दिया गया है। सिक्ख गुरु साहिबान ने न केवल सेवा करने का बार बार आदेश दिया है अपितु स्वयं सेवा में प्रवृत्त होकर हमारे सम्मुख एक आदर्श भी रखा है।

श्री गुरु नानक देव जी ने लंगर की प्रथा चलाई और करतारपुर में स्वयं अपने हाथों से संगत की सेवा करते रहे।

गुरु अमरदास जी की सेवा तो प्रसिद्ध है ही। उन्होंने कई वर्षों तक लगातार गुरु अंगद देव की सेवा की।

इसी प्रकार गुरुनानक देव जी से लेकर गुरुगोबिन्द सिंह जी तक सेवा के इस कार्य को प्राथमिकता दी जाती रही। कहते हैं एक बार गुरु गोविन्द सिंह जी ने एक सिक्ख को पानी का गिलास लाने के लिये कहा। जब वह पानी लाया तो पानी का गिलास पकड़ते हुये गुरुजी ने कहा कि! तुम्हारे हाथ तो बहुत कोमल हैं। उसने उत्तर दिया महाराज! मैंने इन हाथों से कभी काम नहीं किया, मैं इन हाथों से पहली बार आप के लिये पानी लाया हूँ। यह सुनकर गुरु गोबिन्द सिंह जी ने वह पानी का गिलास नीचे गिरा दिया और कहा कि यह हाथ अपवित्र हैं। जिन्होंने कभी सेवा नहीं की। इससे स्पष्ट है कि गुरुसाहिब स्वयं भी सेवा करते थे और अपने शिष्यों को भी सेवा के लिये प्रेरित करते थे। लेकिन सेवा करने की रुचि प्रत्येक व्यक्ति के मन में उत्पन्न नहीं होती। इसकी प्राप्ति के लिये उच्च आचरण की आवश्यकता होती है, इस में कोई संतोषी साधक ही लग सकता है, जिसने सत्य स्वरूप परमात्मा की आराधना की हो, जो कभी कुमार्गगामी न हुआ हो, जो सदैव धर्म कार्यों में अग्रणी रहा हो, जिसने संसारिक बंधनों को तोड़ दिया हो और जो अल्प आहार करके अपना जीवन यापन कर रहा हो वही सेवा पथ पर चल सकने में समर्थ हो सकता है– गुरुवाक है

सेव कीती संतोखीई
जिन्ही सचो सचु धिआइआ।
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ
करि सुक्रितु धरमु कमाइआ
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंघना।
अंनु पाणी थोड़ा खाइआ।

पृ० 466

अर्थात्– परमात्मा का सच्चा सेवक वही है, जो सदैव परम सत्य का भजन करता है, वह कभी भ्रष्ट पथ पर कदम नहीं धरता, सत् कर्मों का धर्म कमाता है। वह संसार के बंधनों को तोड़ता और कम अन्न पानी का भोग करता है। अर्थात् वह आत्म–संयम करता है।

भाई कन्हैया में सेवा का आदर्श रूप देखा जा सकता है जिन्होंने युद्ध भूमि में अपने शत्रुओं को भी समान भाव से जल पिलाया और मरहम पट्टी भी की।

4 संत–संग

गुरुमत में संत शब्द के स्वरुप व्याख्या इस प्रकार की गई–

जिना सासि गिरास न विसरै हरि नामां मनि मंतु
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु।

गु० ग्र० पृ० 319

अर्थात् जिन मनुष्यों को श्वास लेते तथा खाते हुए कभी परमात्मा विस्तृत नहीं होता, जिनके मन में परमात्मा का नाम–रूपी मंत्र है, हे नानक! वही मनुष्य मुबारक हैं, वे ही मनुष्य पूर्ण संत है। गुरवाणी में बार बार यह आता है कि हे प्राणी! जिस वस्तु को खरीदने के लिये तुम संसार में आये हो, वह राम नाम रूपी वस्तु केवल संतों के घर मिलती है। इस खजाने की कुंजी भी संतों के पास ही है–

अनहद वाणी पूँजी
संतन हथि राखी कूंजी

अर्थात्– हरि का नाम अनाहत शब्द का ख़ज़ाना है। इस ख़ज़ाना की कुंजी संतों के हाथ में है।

गु० ग्र० पृ० 893

संत कृपा–वश परमात्मा के मार्ग को दिखाने में समर्थ हैं। वे सत्यान्वेषक होने के नाते संत है और सहजतावश अपने शिष्यों को भी उसी पथ पर प्रवृत्त करते हैं। अतः उनका सत्संग करना चाहिए।

5. हउमै (अहंकार) एवं तृष्णा रोग

गुरुमत मनुष्य के अनुकरणार्थ उच्चतम मार्ग है। लेकिन इस मार्ग में हउमै (अहंकार) एक रुकावट है। अहम् के आवरण में मनुष्य धर्म का मार्ग त्यागकर अनीति का पथ ग्रहण कर लेता है।

हउमैं इतना भयानक रोग है कि केवल मनुष्य ही इस रोग के वशीभूत नहीं हैं, बल्कि पवन, पानी, वैश्वानर, धरती, सातों समुद्र, नदियाँ, पहाड़, पाताल, षट् दर्शन सभी पर इनका प्रभुत्व है। यहां तक कि त्रिदेव भी इससे मुक्त नहीं हैं। सांसारिक पुरुषों के सारे कार्य अंहकार में ही हुआ करते हैं।

जन्म–मरण, देना लेना, लाभ–हानि, सत्य–असत्य, पुण्य–पाप, नरक–स्वर्ग, हँसना–रोना, शौच–अशौच, जाति–पाँति, ज्ञान–अज्ञान, बन्धन मोक्ष आदि सब कुछ ' .हउमैं के द्वारा होते हैं।

आश्चर्य जनक बात यह है कि 'हउमै' (अहंकार) का निदान भी हउमैं मैं ही है।

'हउमै दीरघ रोग है
दारू भी इस माहि'

गु० ग्र० पृ० 466

'अर्थात' यद्यपि अहम्–भाव दुखद रोग है, तो भी इसका उपचार भी इसी में निहित है।" आगे कहा गया है कि यदि अहं को अच्छी प्रकार समझ लिया जाये तो मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है।

'हउमै बूझै ता दरु सूझै
गिआन विहूणा कथि–कथि लूझै

गु० ग्र० पृ० 466

अर्थात् 'यदि समझदार मनुष्य अपने अहम् को समझ ले (आत्मा को चीन्ह) ले तो वह परमात्मा के द्वार को पा सकता हैं।" यहां यह बता देना रुचिकर होगा कि गुरुनानक देव अद्वैतवादी हैं। अहं का विचार वैदांतियों में भी है परन्तु गुरुमत में वेदांत में बताए अहं का स्वरूप में थोड़ा भेद है।

गुरुसाहिब ने अद्वैतवाद को परमात्मा–भक्ति तथा ईश्वर प्यार के सहारे रखा है। यद्यपि गुरुसाहिब अद्वैतवादी है परन्तु वे यह नहीं कहेंगे कि 'मैं ब्रह्म हूँ' वे तो कहेंगे 'उही रे सभ उही रे'

गुरुमत का ब्रह्म निरुपण किसी प्रकार की दार्शनिक अथवा शास्त्रीय प्रणाली को नहीं अपनाता। उसकी अभिव्यक्ति रहस्यात्मक एवं भावात्मक रूप में हुई है।

..... (अहं) रोग को समान गुरुमत में तृष्णा को भी एक रोग ही बताया गया है। तृष्णा का शाब्दिक अर्थ है 'प्यास' लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी वस्तु को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। लेकिन तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती वह बढ़ती ही जाती है।

तृष्णा को तृप्त करने के लिये गुरुमत में कई उपाय भी बताए गये हैं। गुरु अर्जुन देव ने इसका प्रमुख उपाय हरिनाम सिमरण की आराधना बताया गया हैं

वडे वडे राजन अरु भूमन
ताकी त्रिसन न बूझी
लपटि रहे माइआ रंगमाते
लोचन कछू न सूझी।

गु० ग्र० पृ० 672

अर्थात्– विश्व में बड़े बड़े राजा हैं, बड़े बड़े जमींदार हैं उनकी तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती, वे माया के कौतुकों में मस्त रहते हैं। उन्हें आँखों से कुछ दिखता ही नहीं।

अथवा

त्रिसना बूझै हरि कै नामि

गु० ग्र० पृ० 682

अर्थात्– परमात्मा के नाम–स्मरण से माया की प्यास (तृष्णा) बुझ जाती है।

अंत में सार रूप में यह कहा जा सकता है कि गुरुमत सिद्धान्त का मूल स्रोत श्री गुरु नानक देव जी द्वारा प्रदत्त सिद्धान्त एवं उपदेश हैं। परवर्त्ती साखीकारों ने भी गुरुनानक देव जी के उपदेशों को सार रूप में इस प्रकार कहा है। कि

1. किरत करना (श्रम द्वारा जीवकोपार्जन)

2. नाम जपना

3. वंड छकना (बाँट कर खाना)

गुरुनानक देव जी ने स्वयं ही कहा है कि

घालि खाइ किछु हथहु देइ
नानक राहु पछाणहि सेइ

गु० ग्र० पृ० 1242

अर्थात् जो अपना जीविकोपार्जन स्वयं करता है तथा दूसरों को भी बांट कर देता है वही वास्तविक पथ को पहचानता है।

इतना सरल स्पष्ट और सर्वांगीन व्याख्या ढूंढनी दुर्लभ ही है, श्रम को पहले रखना नाम को मध्य में और वंड छकना को अंत में रखना गुरुमत के मूल सिद्धान्त हैं।

गुरु जी ने अपने उपदेशों को **'नाम दान अस्नान द्रिड'** करना भी कहा है नाम का अभिप्राय है ईश्वर की ओर उन्मुख होना दान का अर्थ है विश्व का दर्द बाँटना और स्नान का अर्थ है अपनी ओर देखना और अपना आप संवारना। नाम और दान के साथ संवारा हुआ व्यक्तित्व ही किसी का कुछ संवारने सामर्थ्य रखता है।

गुरुमत एवं निर्मल सम्प्रदाय

निर्मल सम्प्रदाय की संत–परम्परा श्री गुरुनानक देव और बाद में आने वाले नौं उत्तराधिकारियों को ईश्वर की ज्योति मानते हैं। वे श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी को अपना इष्टदेव मानते हैं। इसके साथ साथ दशम् ग्रन्थ, भाई गुरुदास की रचनाओं, जन्म सखियों और उन संतों महापुरुषों को जिन्होंने इस मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त कर ली होती है पर विश्वास करते हैं। निर्मल संत इसी मार्ग का अनुसरण कर अपने जीवन को धन्य बनाते हैं। अतः निर्मल संतों को जीवन गुरुमत के अनुरूप कहा जा सकता है। इसे हम तीन स्तरों पर देख सकते हैं।

1 गुरुमत के अनुरूप जीवन

गुरुनानक देव ने अपने अंतिम 18 वर्ष करतारपुर में व्यतीत किये थे। वे दिन निकलने से डेढ़ पहर पूर्व उठ जाते। संगत स्नानादि कर के एकत्रित हो जाती। पहले 'जपुजी' साहिब का पाठ होता उसके पश्चात् 'आसा दी वार' का कीर्तन। सूर्य निकलने के बाद सवा पहर तक गुरुवाणी का कीर्तन होता रहता। कथा भी होती। 'गगन मै थाल' प्रातः पढ़ा जाता। लंगर भी नियमित रूप से चलता। फिर वे ज़मीन जोतने के लिये खेतों में चले जाते। तीसरे पहर फिर शब्द कीर्तन होता। सायं को 'सोदर' का पाठ फिर लंगर और पहर रात गुज़रने के बाद 'सोहिला' का पाठ। लगभग यही क्रम आज भी निर्मल डेरों में देखा जा सकता है। निर्मल आश्रम ऋषिकेश और निर्मल कुटिया करनाल में आज भी इसी परम्परा का निर्वाह देखा जा सकता है।

गुरु साहिबान ने विद्या के प्रचार एवं प्रसार पर विशेष ज़ोर दिया है। गुरुनानक देव जी का कथन है–

विदिआ वीचारी तां परउपकारी

गु० ग्र० पृ० 356

अर्थात् 'विद्या प्राप्त करके जो मनुष्य परोपकारी हो गया है, तभी समझो कि वह विद्या पाकर विचारवान बना है।

दशम पिता गुरु गोबिन्द सिंह का आदेश है कि

बुधि सुदीपक जिउ उजीआरै

उन्होंने जाग्रत जोति का संकल्प हमारे सम्मुख रखा। वे स्वयं 5 भाषाओं के कवि थे। उन्होंने लोकभाषा को अधिक महत्त्व दिया और लोकभाषा के माध्यम से आम लोगों तक आध्यात्मिक ज्ञान को पहुँचाया। उन्होंने अपने 5 शिष्यों को चुनकर संस्कृत विद्या प्राप्ति हेतु काशी भेजा। वहां वे 'चेतन मठ' में पं० सदा नंद के पास रह कर पढ़ते रहे। यही जिज्ञासु बाद में निर्मल कहलाये।

आज भी निर्मल सम्प्रदाय की परम्परा में इस परम्परा का पालन किया जा रहा है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों के अध्ययन की परम्परा आज भी इन निर्मले संतों में देखी जा सकती है। निर्मल आश्रम ऋषिकेश के संस्थापक मंहत बुड्ढ़ा सिंह जी अपने जीवन में बराबर इस परम्परा का पालन करते रहे। मैंने स्वयं ब्रह्मज्ञानी संत बाबा निक्का सिंह जी को इस परम्परा का दृढ़ता से पालन करते देखा है। वे कोई न कोई ग्रन्थ पढ़ते–पढ़ाते ही रहते थे। श्रीमद्भगवद्गीता तो उन्हें विशेष रूप से प्रिय थी। उपनिषद्ों का पठन पाठन चलता रहता। महंत बाबा रामसिंह भी इसी परम्परा का पालन करते देखे जा सकते हैं।

इन संतों का जीवन गुरुमत के अनुरूप सांचे में ढला प्रतीत होता है। मुझे गोराया के एक श्रद्धालु ने बताया था कि पूज्य महंत बाबा राम सिंह रात्रि के अंतिम पहर में उठ जाते हैं' स्नानादि के पश्चात् गुरुग्रंथ साहिब का वाक् लेते हैं और जो हुक्मनामा आता है सारा दिन उसी के अनुरूप रहने का प्रयास करते हैं।

महंत दयाल सिंह ने अपने ग्रन्थ 'निर्मल पंथ दर्शन' (4 भाग) में निर्मल सम्प्रदाय की 33 शाखाओं की चर्चा की है। जहां भी निर्मल साधुओं ने डेरों की स्थापना की वहां वे विद्या अध्यापन एवं प्रचार को कभी नहीं भूले। वे अपने शिष्यों को भाषा, संस्कृत एवं गुरुमत के ग्रन्थों का अध्ययन अवश्य करवाते हैं। भाषा ग्रन्थों में विचार सागर, पंचदशी, विचार माला, वैराग शतक आदि पढ़ाये जाते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में लघु सिद्धान्त कौमदी, मध्य

कौमदी, तर्क संग्रह, न्याय सिद्धान्त मुक्तावली और वेदांत मुक्तावली का अध्ययन अधिक करवाया जाता है। इसके अतिरिक्त गुरुग्रन्थ साहिब दशम् ग्रन्थ आदि अर्थों सहित पढ़ाये जाते हैं।

गुरुमत का मूल सिद्धान्त अद्वैत अथवा एकेश्वर का सिद्धान्त है। गुरुग्रन्थ का श्री गणेश ही (१ओंकार) से होता है। गुरुनानक देव जी ने सब मनुष्यों में समानता का प्रचार किया। एक स्थान पर उन्होंने कहा है 'मैं सब मनुष्यों को उत्तम मानता हूँ, किसी को अधम नहीं समझता सब घटों को एक निर्माता ने समान रूप दिया है, समूची सृष्टि में एक ही ज्योति व्याप्त है। मनुष्य इस सत्य की जानकारी उसकी कृपा से ही प्राप्त करना है उसके उपकारों को कोई नहीं भुला सकता।

कहते हैं भाई लालो ने जब श्री गुरुनानक देव जी के लिये एक अलग स्थान (चौका) बनाकर प्रसाद छकने के लिये निवेदन किया तो उन्होंने कहा – लालो! समस्त पृथ्वी ही मेरा चौका है, और जो सच से प्यार करता है वह सच्चा (शुद्ध) है यथा।

श्री मुख कहत धरत है जितनी जितना चौका जानो।
सच रते से सूचे हुये मन को भरम मिटानों।

(नानक प्रकाश)

यह समदृष्टि निर्मले संतों में देखी जा सकती है, हिन्दुओं को बड़ा न मानें और मुसलमानों को छोटा न समझें। हरिजनों को नीचा और स्वर्णों को ऊँचा न समझे। यह साम्य योग है।

एक बार एक निर्मल संत ने मुझ से पूछा कि संत किसे कहते है? मैंने कहा जो किसी पर अपनी सत्ता न रखे। उन्होंने कहा नहीं–जो द्वैत न रखे। जिसे सब बराबर नज़र आये वह संत है।

यह विशेषतायें निर्मल संतों में देखी जा सकती हैं।

2 निर्मल सम्प्रदाय द्वारा गुरुमत का प्रचार

निर्मल सम्प्रदाय के संतों का जीवन न केवल गुरुमत के अनुरुप था अपितु उन्होंने गुरुमत के प्रचार–प्रसार में भी अनन्य योगदान दिया।

जून 1716 ई० में बन्दा बहादुर की शहीदी के अनन्तर सिक्खों पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा था। प्रत्येक सिक्ख के सिर का मूल्य निर्धारित किया गया। अपने आपको सिक्ख कहना और गुरुद्वारे में जाना मुश्किल हो गया था। अपनी जान बचाने के लिये सिक्खों को पहाड़ों की शरण लेनी पड़ी। ऐसी विकट स्थिति में गुरुमत का प्रचार–प्रसार निर्मले संतों ने ही किया।

महंत दयाल सिंह जी ने लिखा भी है कि 'निर्मल और उदासी महात्मा केशधारी थे, पर उनका पहरावा फकीरों का था, इसलिये मुसलमान उन्हें अल्ला के लोग समझकर कुछ सखती करने में झिझकते थे।1

निर्मले संतों द्वारा गुरुमत के प्रचार से महाराजा रणजीत सिंह भी बड़े प्रसन्न हुए थे। कहते हैं कि महाराजा रणजीत सिंह एक बार जब कुंभ के अवसर पर हरिद्वार में स्नान करने आये थे। वे निर्मल संतों के गुरुमत प्रचार से बड़े प्रसन्न हुए।

निर्मले संतों में बड़े बड़े विद्वान–कथाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी कथा के द्वारा हज़ारों प्राणियों को सद्–मार्ग दिखाया। इस संदर्भ में मंहत बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज, संत निक्का सिंह जी महाराज, पं० नारायण सिंह जी महाराज, महंत राम सिंह जी, (ऋषिकेश) ज्ञानी जगत सिंह जी अम्बाला, पं० हरि सिंह, पं० दीवान सिंह जी ठीकरी वाले आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार कीर्तन के द्वारा भी इन्होंने ने गुरुवाणी की अमृत वर्षा की, गुरुमत प्रचारार्थ इन संतों ने मंडलियों का निर्माण भी किया। शास्त्रार्थ किये और लोगों के दिल में गुरुमत के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा को उत्पन्न किया। निर्मल सन्त दूसरी मण्डलियों सहित कुम्भादि पर्वों पर भारत के तीर्थ स्थानों – कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, काशी, प्रयाग, उज्जैन, त्र्यम्बक, पटना–में जाते थे। वे वहां गुरुमत को प्रचार करते थे।

ऐसा पहला समागम कुम्भ पर्व पर सन् 1759 ई0 में ऋषिकेश में हुआ था। दूसरी बार अर्धकुम्भी के अवसर पर सन् 1765 ई0 में हरिद्वार में हुआ था। इसी तरह कुम्भ के महान् पर्व (सन् 1783, 1795 ई0) और

1. बाबे नानक दा निरमल पंथ पृ० 37

अर्ध–कुम्भी के पर्व (सन् 1789 और 1801 ई0) पर निर्मल सन्तों के सम्मेलन हुए और उन्होंनें सिक्ख मत का प्रचार किया। वे स्वयं–पाकी थे, उन्हें रसद मिल जाती थी। पर खाना पकाने में बड़ी कठिनाई होती थीः परिणामस्वरूप धर्म–प्रचार के कार्य में अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा असुविधा आती थी। इसलिए सन् 1807 ई0 के कुम्भ पर्व पर बाबा दरगाहा सिंह के डेरे पर लंगर का समुचित प्रबन्ध किया गया। महान् सम्मेलन हुआ जिस में पंजाब के प्रत्येक डेरे के प्रतिनिधि निर्मल सन्त उपस्थित थे। इस अवसर पर समुचित व्यवस्था थी। उन दिनों पंजाब में राजनीति सुस्थिरता आ गई थी। महाराजा रणजीत सिंह का शासन काल था। वे बड़े धर्मभीरु व दयालु थे और सन्तों का सम्मान करते थे। वे इस शुभपर्व पर (कुम्भ) हरिद्वार में स्नान करने आये थे। निर्मल सन्तों के धर्म प्रचार से वह बड़े प्रसन्न हुए। निर्मल सन्त अब तक राजनीतिक प्रभाव से पूर्णतया मुक्त थे। उन्होंने महाराजा रणजीत सिंह द्वारा विवश किये जाने पर भी कोई जागीर नहीं ली।

सन् 1819 ई0 में कुम्भ के अवसर पर समुचित प्रबन्ध न होने के कारण निर्मल सन्तों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसलिए उन्हें कुम्भ आदि पर्वों पर सुचारु प्रबन्ध और गुरुमत के प्रचार के लिए शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। सन् 1831 ई0 के कुम्भ के अवसर पर पहली बार निर्मल साधुओं ने दशम् गुरु जी का ध्वज फहराया, शोभायात्रा में भाग लिया। सन् 1861 ई0 में 'पंचायती अखाड़ा निर्मला' की स्थापना हुई और बाबा महताब सिंह जी को सर्वसम्मति से श्री महन्त बनाया गया। इस दिशा में रियासतों ने निर्मल संतों की पर्याप्त सहायता की।

3. रचना कर्म के द्वारा गुरुमत प्रचार

विद्या और निर्मले संत दो अभिन्न शब्द हैं। जैसे संसार में उदासीन सम्प्रदाय में दीक्षित साधु अपनी निवृत्ति के लिये प्रसिद्ध हैं अथवा सेवा–पंथी अपनी सेवा के लिये जाने जाते हैं अथवा निहंग सिंह अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध हैं वैसे ही निर्मल संत विद्या क्षेत्र में जाने जाते हैं। कुछ विद्वान तो निर्मले संतों को सिक्खों के ब्राह्मण कहना अधिक पसंद करते हैं। निःसंदेह विद्या के क्षेत्र में उन्होंने अपना परचम लहराया है।

निर्मले संत न केवल गुरुमत के अनुरुप अपने जीवन को ढालने में तत्पर रहते हैं, न केवल वे स्थान स्थान पर घूमकर गुरुमत का प्रचार करते हैं अपितु अपने रचना कर्म के द्वारा भी उन्होंने गुरुमत की अपार सेवा की है। उनकी रचनायें दो प्रकार की हैं।

1 भारतीय दर्शन से सम्बन्धित

2 गुरुमत से सम्बन्धित

श्री गुरुग्रन्थ साहिब की व्याख्या सर्वप्रथम इन संतों के द्वारा ही आरम्भ की गई। शास्त्रीय प्रणाली के द्वारा इन्होंने गुरुमत का गौरव–गान किया। निर्मले संतों के यह ग्रन्थ तीन भाषाओं – संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी में देखे जा सकते हैं।

संस्कृत साहित्य – संस्कृत भाषा में गुरुमत साहित्य की रचना कर अपनी विद्वत्ता का परिचय किया। संत निहाल सिंह जी प्रभृति कवियों ने अनेक शास्त्रार्थ करके अनेक प्रसिद्ध विद्वानों एवं दार्शनिकों को पराजित किया और गुरुमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

इससे सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख करना रुचिकर रहेगा। एक बार स्वामी दयानंद सरस्वती अमृतसर आये। उन्होंने 'खालसा' शब्द का अर्थ पूछा। सन्त निहाल सिंह जी ने 'खालसा' शब्द के सौ श्लोक संस्कृत में रचकर दूसरे दिन जा कर सुना दिये। स्वामी दयानंद हैरान हुये और उन्हें अपनी छाती से लगा लिया और कहा कि मुझे आज विदित हुआ है कि सिक्खों में भी संस्कृत भाषा के ऐसे विद्वान कवि मौजूद हैं। संत निहाल सिंह जी की यह रचना 'खालसा शतक' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार गुरुमत दर्शन और सिद्धान्तों से परिचित कराने हेतु पं० कौर सिंह जी ने 'गुरु कौमुदी' की रचना की।

निर्मल विद्वान पं० गुरदित्त सिंह ने नवम् गुरु तेग बहादुर जी द्वारा रचित श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद किया। इनका एक और ग्रन्थ 'गुरुनानक अष्टक' है जिसमें गुरुनानक देव जी की स्तुति की गई है।

इसी संदर्भ में पं० हरी सिंह कृत 'श्री गुरु सिद्धान्त पारिजात' पं० ईशर सिंह काशी कृत 'गुरुमत दिग्विजय' बाबा प्रेम सिंह ऋषिकेश द्वारा रचित 'गुरु स्तोत्र' का नाम लिया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य

गुरु गोबिंद सिंह जी के समय में कवियों का रुझान संस्कृत की बजाए ब्रज भाषा की ओर अधिक हो रहा था। निर्मले संतों ने भी ब्रज भाषा में लिखना आरम्भ कर दिया। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित साहित्यिक ब्रज को अपनाया।

ज्ञानी बदन सिंह जी की निर्मल संत ने अन्य विद्वानों की सहायता से गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका ब्रज भाषा में ही की थी। जिसका प्रकाशन सन् 1906 में हुआ। इसी प्रकार पं० गुलाब सिंह ने मोक्षपन्थ प्रकाश, ज्ञानी ज्ञान सिंह ने पन्थ प्रकाश, पं० गण्डा सिंह ने इतिहास गुरु खालसा एवं महंत टहल सिंह ने कवित्त सवैये हिन्दी में रचकर गुरुमत साहित्य को समृद्ध किया। इस क्षेत्र में पं० तारा सिंह नरोत्तम का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने 'गुरुमत निर्णय सागर' 'गुरु गिरार्थ कोष' एवं 'गुरु तीर्थ संग्रह' जैसे ग्रन्थों की रचना की। यह कोष गुरुमत साहित्य की अमूल्य निधि है।

भाई संतोष सिंह ने तो सिक्ख धर्म की अनेक पहलुओं से सेवा की है, उनकी 'गरब गंजनी टीका' में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। अपने गद्य और पद्य दोनों में लिखा है। आप का 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रन्थ (पद्य में) विशेष उल्लेखनीय है। इसी श्रेणी में संत निहाल सिंह, महंत दयाल सिंह, संत गुरुदित्त सिंह के नाम लिये जा सकते हैं।

पंजाबी भाषा में रचित गुरुमत साहित्य –19वीं शती के अंतिम दशकों में निर्मल विद्वानों का झुकाव पंजाबी लेखन की ओर हो जाता है। कुछ पुस्तकें तो ऐसी भी हैं जिसमें ब्रज और पंजाबी भाषा का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। इस संदर्भ में संत मोहर सिंह, साधु गुरदित्त सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह, गणेशा सिंह, दयाल सिंह आदि का नाम लिया जा सकता है।

4. मौखिक प्रचार के द्वारा

गुरुमत और गुरुवाणी के प्रचार–प्रसार में सबसे पहला श्रेय उदासीन अथवा उदासी सम्प्रदाय को है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक गुरुनानक देव जी के बड़े सुपुत्र बाबा श्री चन्द थे। इनका सम्प्रदाय नानक पुत्रों के रूप में जाना जाता है। अतः बाबा श्री चन्द को गुरुघर का प्रथम प्रचारक कहा जा सकता है। लेकिन उनकी प्रचार विधि प्रायः मौखिक ही रही। साधु आनंदघन की टीका को छोड़कर इनका कोई लिखित दस्तावेज़ प्राप्त नहीं होता। सेवापंथ जिनके प्रेरणा स्रोत भाई कन्हैया जी रहे हैं –इनकी प्रचार विधि भी मौखिक ही रही। कीर्तन के माध्यम से इन्होंने गुरुवाणी का प्रचार–प्रसार किया। गुरु अर्जुन देव के समय बाबा बुड्ढ़ा जी की शैली भी मौखिक ही रही।

निर्मले संतों की प्रचार विधि अधिकांशतः मौखिक ही रही है। सन् 1777 ई० से उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक वे रचना कर्म के माध्यम से प्रचार करते रहे। शेष समय में लगभग प्रचार मौखिक ही रहा। निर्मल आश्रम ऋषिकेश से जुड़े संत बाबा निक्का सिंह, संत भगत सिंह, संत गोपाल सिंह, संत दर्शन सिंह, संत हरबंस सिंह, संत बाबा राम सिंह, संत जोध सिंह, संत अमरीक देव, संत गुरिंदर सिंह आदि भी मौखिक रूप से ही प्रचार करते रहे हैं।

निर्मल सम्प्रदाय की अन्य शाखाओं में जैसे संत बलबीर सिंह सीचेवाल राड़ेवाले संत ईशर सिंह, मस्तुआने वाले संत–आजीवन गुरुमत का प्रचार प्रसार करते रहे लेकिन उनकी प्रचार विधि प्रायः मौखिक ही रही है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निर्मले संत न केवल गुरुमत के अनुरुप जीवन जीते हैं अपितु उन्होंने दूर दूर तक यात्रायें करके गुरुमत का प्रचार भी करते रहे हैं। उन्होंने शिक्षण संस्थायें खोलकर, संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी में साहित्य रचनाकर एवं तीर्थ स्थानों पर अपने आश्रमों के माध्यम से गुरुघर की अपार सेवा की है।

निर्मले संतों पर अद्वैत वेदांत का प्रभाव

'वेदांत' शब्द का अर्थ है वह शास्त्र जिसके लिये उपनिषद् ही प्रमाण है। साधारण रूप से लोग 'वेद का अंत' अर्थात् 'उपनिषद्' ऐसा ही अर्थ करते हैं परन्तु शास्त्र दृष्टि से यह शुद्ध नहीं है। वेदांत के विकास के तीन प्रस्थान माने गये हैं–

1. उपनिषद् 2. भगवद्गीता 3. ब्रह्मसूत्र

इन तीनों को प्रस्थानत्रयी कहा जाता है, शंकराचार्य ने उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र इस प्रस्थानत्रयी पर अपनी विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखा है।

शंकर के अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त इस सुप्रसिद्ध श्लोक से ज्ञात होता है–

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रं इति वेदांत डिंडिमः

अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है, भिन्न नहीं। जो भी उत्तम शास्त्र है, वह सारा इसी से जाने। यह वेदांत का डंका है।

अद्वैत वेदांत के प्रतिपादक–आचार्य शंकर–एक परिचय

भारतीय षड्दर्शनों में अद्वैत वेदान्त का विशिष्ट स्थान है। आचार्य शंकर इसके प्रतिपादक हैं। न केवल भारतीय दर्शन में, बल्कि विश्व के सर्वोच्च दार्शनिकों में शंकराचार्य का नाम एक अद्भुत विचारक के रूप में स्वीकार किया गया है। उनकी प्रतिभा और उनके प्रौढ़ विचारों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनके भाष्य पर सबसे अधिक भाष्य और टीकाएँ लिखी गयीं। उनका जन्म 788 और मृत्यु 820 ई० में हुई। 32 वर्ष की यह अल्पायु कुछ भी नहीं है; किन्तु उन्होंने इसी थोड़े से समय में जो कार्य किये उनको दृष्टि में रखकर हमें यही ज्ञात होता है कि उनमें दैवी प्रतिभा थी। उनके बाल्यकाल के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब वे आठ वर्ष के थे, तभी उन्होंने समस्त वेदों का अध्ययन एवं मनन कर डाला था।

आरम्भ में ही उन्होंने संन्यास धारण कर लिया था और इस प्रकार एकान्त होकर वे ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के तारतम्य पर विचार करते रहे। **उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी थी कि संन्यासी होते हुए भी उनका हृदय बड़ा कोमल था। उसमें माता के लिय बड़ी श्रद्धा थी। कहा जाता है कि संन्यासावस्था में भी अपनी मृतक माता का दाह संस्कार उन्होंने हिन्दू कर्मकाण्ड के अनुसार सम्पन्न किया था।**

आचार्य शंकर ने भारत की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारत के विभिन्न अंचलों का उन्होंने भ्रमण किया। उस युग के सभी प्रख्यात विद्वानों के पास जाकर उन्होंने उनके विचारों को जाना और अपने विचारों से उन्हें अवगत कराया। उनका उद्देश्य, किसी विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित करके उनको नीचा दिखाना और अपनी कीर्ति को फैलाना नहीं था।

उन्होंने भारत के सभी तीर्थस्थानों का अवगाहन किया किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में वे तपोभूमि केदारनाथ में रहने लगे। वहीं उन्होंने शरीर त्याग किया। वहाँ भी उनका एक आश्रम या पीठ है।

आचार्य शंकर ने वस्तुतः कितने ग्रन्थ लिखे, इस सम्बन्ध में आज भी विवाद है। किन्तु इतना निश्चित एवं सर्वमान्य है कि उन्होंने प्रमुख उपनिषदों, 'ब्रह्मसूत्र' और 'गीता' पर भाष्य लिखे। वे उच्चकोटि के कवि भी थे।

इस प्रकार शंकराचार्य में एक ओर तो हमें दार्शनिक नीरसता दिखायी देती है और दूसरी ओर भावुकतापूर्ण भक्त–हृदय भी। आचार्य शंकर द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय या पंथ को 'दशनामी' नाम से कहा जाता है। शंकराचार्य के प्रमुख चार शिष्य पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वर और तोटक चार मठों के अधिष्ठाता नियुक्त हुए।

मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ

आचार्य शंकर की सबसे बड़ी विजय थी अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान एवं उनकी धर्म पत्नी उभय भारती को पराजित करना।

मण्डन मिश्र अपने युग के प्रसिद्ध मीमांसक हुए। वे कुमारिल भट्ट के शिष्य थे और प्रयाग में भेंट होने के समय कुमारिल भट्ट ने ही शंकराचार्य को मण्डन मिश्र के पाण्डित्य का परिचय दिया था। **उसके बाद ही शंकराचार्य शास्त्रार्थ करने के लिए माहिष्मती गये। माहिष्मती के निकट रेवा नदी के तट पर शंकराचार्य ने जब मण्डन मिश्र की दासी से उनके घर का पता पूछा तो उसने कहा: 'स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण वेदों के सम्बन्ध में व्याख्यान करती हुई पिंजरस्थ मैनाएं जिस घर के द्वार पर आपको दिखायी दें, हे महानुभाव, उसी को मण्डन मिश्र का घर जानिये।'** इस प्रकार शंकराचार्य जब मण्डन मिश्र के घर पहुँचे तब वहाँ का वातावरण उन्हें सचमुच ही वैसा लगा। बाद में शंकराचार्य की मण्डन मिश्र से भेंट हुई। दोनों में गम्भीर शास्त्रार्थ हुआ। अंत में मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया। संन्यास धारण करने के बाद उनका नाम सुरेश्वराचार्य हुआ। वे शृंगेरी मठ के अध्यक्ष नियुक्त किये गये।

अद्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धान्त

शांकरमत का दार्शनिक सिद्धान्त 'अद्वैतवाद– के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह सारा विश्व–प्रपंच एक ही अद्वितीय तत्त्व में अन्तर्भूत, स्थित और प्रकाशित है। इस अद्वितीय तत्त्व ब्रह्म के अतिरिक्त इस संसार में किसी की सता नहीं है। वही सारे दृश्यमान जगत् को प्रकाशित करने वाला, स्वयंप्रकाश, अनन्त, अखण्ड, अनादि, अविनाशी, चेतनस्वरूप और आनन्दमय है।

यह संसार असत्य, जड़ और दुःखात्मक है, जब कि ब्रह्मा सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है। वह 'सत्' है, अर्थात अपने निश्चत् रूप से कभी भी व्यभिचरित् नहीं होता। वह 'चित्' है, अर्थात ज्ञानस्वरूप चैतन्य होने के कारण वह सदा 'प्रबद्ध' है। पूर्णकाम होने के कारण वह 'आनन्दमय' है। इस सृष्टि के पहले भी वहीं था, इस सृष्टि की सत्ता में भी वह है और इस सृष्टि की लयावस्था में भी वह रहेगा। जैसे मिट्टी से बने बर्तन मिट्टी के विकारमात्र हैं उसी प्रकार यह संसार भी ब्रह्म का विवर्त है।

जगत् का मिथ्यात्व

मिथ्या वह पदार्थ है, जिसकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है और जो दूसरे की सत्ता से सत्तावान् है। अँधरे में रखे हुए घट की सत्ता प्रकाश की सत्ता पर निर्भर है, अन्यथा उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। वेदान्त की दृष्टि से जगत् की कोई सत्ता नहीं है, ब्रह्म की सत्ता से वह सत्तावान् है। इसलिए जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य कहा गया है (ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या)।

सत्ता का स्वरूप

यहाँ पर इतना कहना आवश्यक है कि शांकर वेदान्त–दर्शन में 'सत्ता' तीन प्रकार की है– 'पारमार्थिकी', प्रतिभासिकी' तथा व्यावहारिकी'।

पारमार्थिकी सत्ता–जिस वस्तु का अस्तित्व त्रिकाल में अबाधित हो, वही पारमार्थिक सत् है। ऐसी सत्ता एकमात्र 'ब्रह्म ' की है।

प्रातिभासिकी सत्ता–अन्धकार में दूर से घास के पास एक 'वस्तु' को देखकर उसे लोग 'सर्प' समझ लेते है और वहाँ से भय के कारण दूर हट जाते हैं। उनके शरीर में भय की चेष्टाएँ होती हैं। इससे स्पष्ट है कि उस मनुष्य को 'सर्प का भान हुआ है। परन्तु थोड़ी ही देर में एक दूसरा व्यक्ति दीपक लाकर जब उस 'वस्तु' को दिखाता है, जो उस भयभीत व्यक्ति को स्पष्ट मालूम होता है कि वह 'वस्तु' 'सर्प' नहीं है, वह तो एक 'रस्सी' है। इससे पूर्व का उसका 'सर्पज्ञान' बाधित हो जाता है।

इस प्रकरण में 'सर्प' का होना बाधित हो गया और उसका सर्प 'ज्ञान' भ्रान्ति है ऐसा निश्चित हुआ। जितने समय तक सर्प का ज्ञान उसे था, उतनी देर के लिए तो 'सर्प' का अस्तित्व मानना ही पड़ता है, क्योंकि उस ज्ञान के भय आदि चिन्ह उस व्यक्ति में देख पड़ते हैं। परन्तु वह बाद को बाधित हो जाता है, उसका भय दूर हो जाता है और वह 'ज्ञान' मिथ्या कहा जाता है। वह ज्ञान क्षणिक है, अतएव उससे व्यवहार भी नहीं होता। 'सर्प–ज्ञान के इस अस्तित्व को 'प्रातिभासिकी सत्ता' कहते है। प्रतिभासमात्र के लिए उसका अस्तित्व है। जिसके अस्तित्व को संसारदशा में व्यवहार के लिए 'सत्य'

मानते हैं, वही व्यावहारिकी सत्ता है। सत्यभावना का नाश ब्रह्मज्ञान होने से होता है, अन्यथा नहीं।

माया

माया ब्रह्म की शक्ति है। उससे संयुक्त होकर ब्रह्म विश्व की उत्पत्ति करता है यह जगत् ब्रह्म का विवर्त है।

माया की शक्तियाँ

माया की दो शंक्तियाँ मानी गयी हैः आवरण और विक्षेप। माया की इन्हीं शक्तियों के कारण ब्रह्म का वास्तविक रूप छिप जाता है और उसमें अवस्तुरूप जगत् की प्रतीति होती है। आवरण शक्ति तमोरूपा और विक्षेप शक्ति रजोरूपा है। ये दोनों शक्तियाँ एक–दूसरी की पूरक हैं। आवरण का शब्दार्थ है वास्तविकता पर परदा डाल देना और विक्षेप का अर्थ है उसकी जगह दूसरी वस्तु को रख देना।

सदानन्द के 'वेदान्तसार' में कहा गया है कि "माया की आवरण शक्ति जीव के ज्ञान नेत्रों के आगे आकर ब्रह्म के वास्तविक रूप को उसी प्रकार ढक लेती है, जैसे एक छोटा सा मेघ का टुकड़ा द्रष्टा के नेत्रों को ढ़ककर अनेक योजन विस्तृत सूर्य को छिपा लेता है।" इस प्रकार आवरण शक्ति के द्वारा जब ब्रह्म का वास्तविक रूप ढक जाता है तक "विक्षेप शक्ति नानाविध प्रपंच को उत्पन्न करके जीव को उसमें उसी प्रकार भ्रमा देती है, जैसे रज्जु में सर्प की उद्भावना होती है।"

शकंराचार्य ने भी 'विवेकचूड़ामरिण' में इन दोनों मायावी शक्तियों का चित्र अंकित करते हुए लिखा है कि 'जैसे दुर्दिन में मेघों से सूर्य छिप जाने पर हिमवर्षा तथा शीतल एवं तीखी हवा जीवों को व्यथित कर डालती है उसी प्रकार ये दोनों शक्तियाँ क्रमशः ब्रह्म को आच्छादित करके संसार को भ्रान्त कर देती है।'

इन शक्तियों के अस्त्र–शस्त्र हैं काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिः जो विविध रूप धारण करके जीव की आँखों, बुद्धि और दर्शनशक्ति पर

शरीर, अस्मिता, अंहकार का पर्दा (आवरण) डाल देते हैं, जिसके कारण वह समझता हैं '**मैं**' अनन्त, अनादि, अजर, अमर परमात्मा नहीं हूँ। मैं हाड़–मांस का एक पुतला मात्र हूँ। नश्वर शरीर हूँ।' यहा आवरण उसको अंधा बना देता है और उसको सांसारिक शरीरक्षोभों से विक्षिप्त कर देता है। अर्थात् उसे सत्य–प्रिय–हित के मार्ग से बहका कर असत्य–अहित की ओर ले जाता है।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् मायावी ईश्वर का एक खेल है। इस खेल में माया एक ऐसी सुषुप्ति है, जिसमें संसारी जीव अपने स्वरूप को भूलकर सो जाते हैं। यह सारा खेल केवल जीव के लिए है। माया और ईश्वर उससे प्रभावित नहीं होते। यह माया ही जीव के भ्रम का कारण है। उसको सीधी राह से उलटी राह में ले जाती है। इसीलिए माया को अविद्या तथा अज्ञान कहा गया है।

जीव

जीव का स्वरूप

शरीर व आत्मा का नाम जीव है। उसको ईश्वर का अंश अथवा प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। 'माया के परिणामस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म शरीर सहित आत्मा ही जीव कहलाता है' (कार्योपाधिरयं जीवः)। इसी बात को शंकराचार्य ने 'शारीरक भाष्य' में इस प्रकार कहा है, 'इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार और शरीर की उपाधियों से घिरा हुआ और पृथक् किया गया आत्मा ही जीव है'

जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब

इस प्रतिबिम्ब का रहस्य समझ लेने के बाद जीव के अस्तित्व की वास्तविकता समझी जा सकती है। प्रतिबिम्ब कहते हैं छाया के लिए। यह प्रतिबिम्ब सापेक्ष्य होता है, कल्पित अथवा अवास्तविक नहीं। जहाँ कहीं भी प्रतिबिम्ब दिखायी देगा वहाँ प्रतिबिम्बत मूल वस्तु का होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए मुख के प्रतिबिम्ब के लिए मुख, दर्पण और प्रतिबिम्ब, ये तीन वस्तुएँ एक साथ रहती हैं। जीव को जब हम आत्मा का प्रतिबिम्ब स्वीकार करते हैं तो ऐसी अवस्था में हमें मानना पड़ेगा कि–मूल बिम्ब ईश्वर

है, दर्पण अन्तःकरण है और चेतना या जीव उसका प्रतिबिम्ब है। इससे यह आशय निकलता है कि जीव, ईश्वर से कोई भिन्न नहीं है, उसी की छाया है। जिस प्रकार बाहर धूप में रखे हुए स्फटिक में व्याप्त होने वाला प्रकाश, सूर्य के प्रकाश का ही प्रतिबिम्ब है ठीक उसी प्रकार परमात्मा का प्रकाश, जो अन्तःकरण पर पड़ता है, जीव कहलाता है और 'मैं' की चेतना के रूप में प्रकट होता है। इसी अर्थ में जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। ये शरीरादि उपाधियाँ अविद्याजनित हैं, वास्तविक नहीं है। जब जीवगत अविद्या नष्ट हो जाती है तो वह जीव फिर अपने मूलरूप ईश्वर में आ जाता है। आचार्य शंकर का यह आशय है।

निर्मले संत और अद्वैत सिद्धान्त

निर्मले संतों पर जिस वेदांत का अधिक प्रभाव प्रड़ा वह 'शांकर–वेदांत ही है जिसे अद्वैत–दर्शन अथवा 'उत्तर मीमांसा' के नाम से जाना जाता है। निर्मले विद्वान् आज तक यही प्रकट करते रहे हैं कि गुरुमत तथा वेदांत मत का सिद्धान्त एक ही है। उनका विश्वास है कि दुःखी जीवों को देखकर गुरुनानक देव जी ने अद्वैत–सिद्धान्त की स्थापना की है उनका कथन है–

ततु निरंजनु जोति सबाई। सोहं भेदु न कोई जीउ।
अपरंपर पारब्रहमु परमेसरू नानक गुर मिलिआ सोई जीउ

गु० ग्र० पृ० 599

अर्थात् परमात्मा समस्त जगत् का तत्त्व है, माया के प्रभाव से रहित है। प्रभु पारब्रह्म अपरंपार है और सर्वोत्कृष्ट मालिक है। हे नानक! जो मनुष्य गुरु को मिलता है, उसे उस प्रभु की ज्योति सर्वत्र सुशोभित दृष्टिगोचर होती है, जिसमें कोई दूरी या भेदभाव नहीं है । एक अन्य उदाहरण–

पंच तंतु मिलि काइआ कीनी
तिस महि राम रतनु लै चीनी
आतम रामु रामु है आत्म
हरि पाइऐ सबदि वीचारा है

गु० ग्र० पृ० 1030

अर्थात् 'यह शरीर पाँचों तत्त्वों के मिलन से बना है उसमें प्रभु की विद्यमानता को पहचानों। आत्मा (जीव) ही परमात्मा है, परमात्मा आत्मा है, इस तथ्य की सूझ गुरु के शब्दों के ज्ञान से ही होती है।'

अपने शिष्यों को काशी भेजने के पीछे शायद गुरुगोबिन्द सिंह जी का यही मंशा रही हो कि गुरुवाणी–व्याख्या को वैचारिक धरातल देने के लिये उन्हें उस समय के प्रधान विचार से जोड़ा जाए। क्योंकि उस समय की वैचारिक–धारा वेदांत से प्रभावित थी। अतः निर्मले विद्वानों ने गुरुनानक देव जी की वाणी से अद्वैत दर्शन का न केवल प्रचार किया अपितु प्रमाणों सहित ग्रन्थों के रूप में निर्माण भी किया। उन्होंने अद्वैत दर्शन एवं गुरुवाणी के तुलनात्मक अध्ययन भी किये।

निर्मले संत शांकर वेदांत से इतने प्रभावित थे कि वे स्वामी दयानंद जी के व्याख्यानों में भारी संख्या में आया करते थे। स्वामी जी उनके 'अद्वैत वेदांत' के प्रेम को देखकर उनसे कभी कभी मज़ाक भी कर लेते थे। पंडित ईश्वर सिंह नाम के एक निर्मल संत जो वेदांत के निष्ठावान विद्वान् थे उनमें से एक थे।

निर्मल परम्परा से सम्बन्धित ज्ञानी बदन सिंह जी की 'गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका' जिसे फरीदकोटी टीका के नाम से जाना जाता है वेदांत रंग में रंगी गुरुवाणी व्याख्या प्रस्तुत करती है।

गुरुवाणी को उपनिषदों में व्यक्त विचारों का ही एक रूप माना गया है। प्रो. रमेश चन्द्र ने लिखा भी है कि Both the upanishads and the teachings of Guru Nanak we find attempts to give a purified version of religion which is the very essence of Hinduism. गुरुमत दर्शन को वैदांतिक ब्रह्म का अद्वैत अनुभव ही समझा जाता है। यही निर्मल सम्प्रदाय के संतों की धारणा रही है।

प्रसिद्ध निर्मल विद्वान पंडित हरि सिंह ने गुरुमत–व्याख्या बारे अपनी पुस्तक का नाम 'अद्वैत अनुभव प्रकाश' रखा था जो निर्मल–दृष्टिकोण का परिचायक है।

हमारा अपना मत यह है कि गुरुमत केवल अद्वैत मत नहीं है। गुरुजी संसार को केवल मिथ्या अथवा भ्रम ही नहीं समझते जैसा कि अद्वैत मत मानता है। गुरुमत में यह उसी सच्चे की कोठड़ी है और उसी का उसमें निवास है। क्रियात्मक पहलू की ओर गुरु साहिब ने शंकर के सन्यास का प्रचार नहीं किया। वरन् प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया है लेकिन साथ में यह भी कहा है जल के कमल की भाँति निर्लिप्त रहना है।

निर्मल सम्प्रदाय से पूर्व 'उदासीन सम्प्रदाय' ने भी गुरुवाणी के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दिया था। यह सम्प्रदाय वेद को प्रमाण मानता है। यद्यपि यह परम्परा मौखिक थी लेकिन आनंदघन की कुछ टीकायें उपलब्ध हैं। निर्मल सम्प्रदाय पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। कहें तो यह भी कह सकते हैं कि वेदांत–दर्शन निर्मल सम्प्रदाय को जन्म–घुट्टी के रूप में प्राप्त हुआ।

मैं प्रायः निर्मल सम्प्रदाय के संतों से मिलता रहता हूँ उनमें से जिन्होंने वेदांत की विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं भी की है उनके जीवन एवं आचार में भी अद्वैत–वेदांत दर्शन के इस प्रभाव को देखा जा सकता हैं। संत गुरिंदर सिंह जी जिन्हें छोटू महाराज जी के नाम से जाना जाता है जो बहुत समय तक निर्मल आश्रम ऋषिकेश से जुड़े रहे हैं आजकल वेदांत के पठन–पाठन में ही व्यस्त रहते हैं। संत प्यारा लाला जी ने तो अपना सारा जीवन ही वेदांत अध्ययन एवं प्रचार में लगा दिया है।

गुरुवाणी–व्याख्या की निर्मल प्रणाली

'आदिग्रन्थ' के सम्पादन से पूर्व ही गुरुवाणी की व्याख्या का आरम्भ हो गया था। गुरु नानक देव स्वयं अपनी वाणी की व्याख्या, अपनी रचना में ही करते रहे। आप के उत्तराधिकारी गुरु साहिबान भी श्री गुरु नानक देव जी द्वारा स्थापित सिद्धान्तों, विचारों को आधार बनाकर गुरुवाणी की व्याख्या करते रहते हैं। विद्वानों ने इसे सहज प्रणाली का नाम दिया है।

भाई गुरुदास (1551–1636 ई०) जी की 'वारां' को गुरुवाणी की कुंजी कहा गया। भाई गुरुदास ने 675 कवित्त और 40 'वारां' लिखी। ये रचनाएं गुरु साहिबान ने पसंद की तथा गुरु अर्जुन देव ने फ़रमाया कि ये गुरु साहिबान की वाणी को समझने में साधारण पाठकों के लिये सहायक सिद्ध होंगी।

इस प्रणाली को 'भाई प्रणाली कहा जा सकता है। इस प्रणाली का आरम्भ 22 मंजियों की स्थापना के साथ जोड़ा जाता है। यहां के प्रमुख प्रचारकों ने गुरुमत की व्याख्या आरम्भ की और गृहस्थ आश्रम वालों को गुरुदर्शन, सत्संग, नाम–जप, सेवा अपनाने पर बल दिया।

विद्वानों ने गुरुमत की तीसरी प्रणाली को परमार्थ प्रणाली कहा है। गुरु अर्जुन देव जी ने अपने भतीजे सोढ़ी मेहरबान को अपने पास रखकर गुरुमत का तकनीकी ज्ञान दिया और व्याख्या करने की विधि बताई। बाद में सोढ़ी मेहरबान गुरुघर से विलग हो गया और गुरुवाणी की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से करने लगा। सोढ़ी मेहरबान ने न तो शास्त्रों की निंदा की और न ही उनको प्रमाण माना।

इसके पश्चात् उदासीन अथवा उदासी सम्प्रदाय द्वारा गुरुवाणी की व्याख्या का नाम लिया जा सकता है। उदासी सम्प्रदाय का आरम्भ श्री गुरुनानक देव जी के बड़े सुपुत्र श्री चंद जी से माना जाता है। आप गुरुघर के प्रथम प्रचारक भी थे। यह सम्प्रदाय वेद को प्रमाण मानता है। यह प्रणाली प्रायः मौखिक ही थी केवल एक व्याख्याकार आनंदघन की कुछ टीकायें उपलब्ध हैं।

साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय दो स्कूल उभर कर सामने आये। इसमें से पहली प्रणाली को 'निर्मल प्रणाली' कहा जा सकता है। निर्मल सम्प्रदाय उन विद्वानों का संगठन है जिन को ब्रह्मचारियों के वेश में श्री गुरुगोबिंद सिंह जी ने संस्कृत विद्या प्राप्ति हेतु काशी भेजा था।

उदासी सम्प्रदाय की भाँति निर्मल पंथ के विद्वान भी वेद को प्रमाण मानते हैं और गुरुवाणी को 'कलियुग के वेद' का दर्जा देते हैं। भाई संतोष सिंह, पंडित गुलाब सिंह पं० तारा सिंह, पं० ईश्वर दास, ज्ञानी ज्ञान सिंह, आदि की गिनती निर्मल व्याख्याकारों में की जाती है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब का फरीदकोटी टीका जिसे ज्ञानी बदन सिंह ने तैयार किया इसका आधार ग्रन्थ माना जाता है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह टीका फरीदकोट के महाराजा की सहायता द्वारा लिखी गई थी। उन्होंने निर्मले विद्वानों को आमंत्रित कर गुरुग्रन्थ साहिब जी की टीका करने का विचार उनके सामने रखा। उन्होंने निर्मले संतों से कहा कि–आपही यह महान् कार्य कर सकते हो। निर्मले संतों ने महाराज की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इस महान् कार्य को करने के लिये ज्ञानी बदन सिंह आगे आये। गुरुग्रन्थ साहिब का उनका चिंतन मनन बहुत गहन था। वे महाराजा के वंशज भी थे। आपने स्वयं और अन्य निर्मल संतों की सहायता से इस महान् कार्य को पूरा किया।

यह टीका सर्वप्रथम 1906 ई० में चार भागों में प्रकाशित हुई। पुनः सन् 1925 में प्रकाशित हुई। इसमें टीकाकार ने हिन्दू रंग में रंगी गुरुवाणी–व्याख्या प्रस्तुत की।

गुरुवाणी व्याख्या की निर्मल प्रणाली के पश्चात् अनेक अन्य प्रणालियाँ अस्तित्व में आई। गुरुगोबिंद सिंह के समय में ही भाई मनी सिंह गुरुग्रन्थ साहिब के अर्थ एवं व्याख्या कर के जिज्ञासुओं को समझते रहे। तत्पश्चात् अनेक विद्वानों ने इसमें अपना सहयोग किया। इस क्षेत्र में भाई चंदा सिंह, भाई हज़ारा सिंह, संत संगत सिंह, संत गुरबचन आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आधुनिक काल में भाई जोध सिंह, प्रो. तेजा सिंह, प्रो. साहिब सिंह, भाई वीर सिंह, प्रो. नारायण सिंह, प्रो. मनमोहन सहगल आदि का कार्य भी विशेष उल्लेख के योग्य है।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व गुरुवाणी की जितनी भी व्याख्या हुई है, उसका आधार प्रधानतः भारतीय दर्शन एवं भारतीय संस्कृति रही है। पाश्चात्य प्रभाव के परिणाम स्वरुप भारत में एक नयी चेतना का उदय हुआ। 'सिंह सभा' की लहर भी इसी का परिणाम थी। इस समय बुद्धि जीवियों का एक नया वर्ग सामने आया। जिसने आधुनिक संदर्भ में गुरुवाणी की व्याख्या आरम्भ की। इस व्याख्या प्रणाली में व्याकरण को विशेष महत्त्व दिया गया। इस प्रणाली में एक नया दृष्टिकोण भी सामने आया।

लेकिन मेरा विनम्र निवेदन है कि गुरुवाणी मूलतः आनंद स्वरूप है। गुरुजी ने इसका नाम विस्माद रखा है। इसमें विस्माद एवं वाहु–वाहु पर बहुत बल दिया गया है। अतः केवल व्याकरण के माध्यम से गुरुवाणी की आत्मा को नहीं समझा जा सकता।

लेकिन गुरुवाणी की निर्मल प्रणाली का महत्त्व उसी प्रकार बना हुआ है। इस प्रणाली ने न केवल आने वाले व्याख्याकारों को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया– अपितु आने वाली व्याख्या प्रणालियों के मार्ग को भी प्रशस्त किया। निर्मल विद्वानों का अध्ययन अधिक विशाल है, उनकी दृष्टि भी अधिक व्यापक एवं स्वतंत्र रही है। लोभ लालच से दूर रहकर वे एक समर्पित भाव से गुरुवाणी का पठन–पाठन, अध्ययन–अध्यापन एवं व्याख्या करते रहे हैं यद्यपि उनका यह कार्य अधिक मौखिक रहा है।

संत बाबा निक्का सिंह जी की सहज कथा (4 भाग) इसका प्रमाण है। 'सहज–कथा' उनके मौखिक प्रवचनों का लिखित रूप है। गुरुवाणी की निर्मल प्रणाली का यह एक श्रेष्ठ उदाहरण है जो यह प्रमाणित करता है कि आज भी निर्मल संतों की विचार एवं जीवन शैली ज्यों की त्यों बनी हुई है। कम से कम इसके ऐतिहासिक योगदान से तो इनकार नहीं किया जा सकता।

निर्मल सम्प्रदाय की देन

(निर्मल आश्रम ऋषिकेश के संदर्भ में)

जिस दिन से दशम् गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सन् 1686 ई0 में पाँच शिष्यों को संस्कृत विद्या प्राप्त करने के लिये बनारस भेजा था, उस दिन से लेकर आज तक निर्मल संत उन्हीं आदर्शों एवं जीवन–मूल्यों को लेकर जी रहे हैं। यदि कुछ बदला है तो केवल बाहरी रूप। साधारण कुटीर पक्के मकानों में बदल गये हैं, लेकिन उनके भीतर रहने वाले वही – नाम–जप में अवस्थित सात्विक पुरुष। समता, उदारता, संतोष, अपरिग्रह, साधुता, ब्रह्मचर्य, नाम–जप सेवा आदि गुणों को देखकर ही दशम् गुरु ने इन संतों को निर्मल वेश प्रदान किया।

निर्मले संतों का यह सौभाग्य ही था कि उन्हें ये गुण गुरु–घर से ही प्राप्त हुये थे। महाराज श्री गुरुनानक देव तो बिना किसी भेदभाव से प्रत्येक प्राणी के समान रूप से हित चिंतक थे। वे तो सब किसी के लिये सुख–समृद्वि की अभिलाषा रखते थे। उनके सम्बंध में एक कवि ने ठीक ही कहा है–

खेत चरे जाते थे उनके,
गाते थे वे हर्ष समेत।
भर भर पेट चुगो री चिड़ियो
हरि की चिड़ियां हरि के खेत।

यह एक प्राकृत नियम ही है कि किसी वंश के आदि पुरुष के अनेक गुण और अन्य विशेषतायें उसके वंशज प्राणियों में भी न्यूनाधिक मात्रा में रहती ही हैं। इसी प्रकार धर्माचार्य महापुरुषों के विशिष्ट गुण एवं पवित्र भावनायें उनके मतावलम्बी सम्प्रदायों में भी रही हैं। अतः यह गुण निर्मल सम्प्रदाय को सहज रूप ही प्राप्त हो गया।

यही कारण है यह निर्मल संस्कृति आज भी जाग्रत और जीवन्त है, इसकी दीप–शिखा अखण्ड रूप से प्रज्वलित रहकर मानवता का पथ–प्रदर्शन करती आ रही है। निर्मल–संस्कृति की इस अखण्ड ज्योति में जब भी घृत

की आवश्यकता पड़ी है वह किसी न किसी रूप में अवतरित हुई है। गुरुओं द्वारा प्राप्त सपूतों ने इस निर्मल–ज्योति को मंद नहीं होने दिया।

इसकी दीप शिखा को अखण्ड रूप से प्रज्वलित रखने में एक नाम निर्मल आश्रम ऋषिकेश का भी है जिसकी स्थापना आज से लगभग 109 वर्ष पूर्व ब्रह्म ज्ञानी महंत बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज ने की थी।

आपका जन्म गाँव हल्लोवाल जिला गुरदासपुर (पंजाब) में लगभग सन् 1861 ई0 में माना जाता है। आपके पूज्य पिता स0 प्रताप सिंह जी एवं माता श्रीमती शान्ति देवी जी बड़े ही धार्मिक विचारों वाले थे। महन्त बुड्ढ़ा सिंह जी मधुरभाषी, कुशल प्रबन्धक, शास्त्र ज्ञाता और उच्च कोटि के वक्ता भी थे। सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण संत समाज ने आप जी को निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल (हरिद्वार) का सचिव नियुक्त किया था। इस सेवा का आप ने इतनी कुशलता से निर्वाह किया कि उससे प्रभावित होकर अखाड़े की ओर से आपको रमत (दल) का अध्यक्ष बनाया गया।

महंत बुड्ढ़ा सिंह देश के प्रमुख तीर्थ स्थानों का भ्रमण करते हुए हरिद्वार भी आये। इसी दौरान आपके मन में एक विचार आया कि ऋषिकेश में भी गुरु–घर का स्थान होना चाहिये जहां तपस्या एवं साधना में निरत महात्माओं के लिये निवास एवं भोजन का प्रबन्ध हो। इसी विचार को साकार रूप देने के लिये आपने सन् 1900 ई0 में गंगा के किनारे एक स्थान को खरीदकर निर्मल आश्रम की नींव रखी। सर्वप्रथम गुरु ग्रंथ साहिब जी के लिये एक–दो कमरों का निर्माण किया गया और साधुओं के लिये कुछ कुटियों का निर्माण हुआ व साथ में लंगर की व्यवस्था भी कर दी गई।

अब श्रद्धालुओं के आवागमन आरम्भ हुआ। सुदूर सिंध प्रांत (अब पाकिस्तान में) तक से श्रद्धालु बड़ी संख्या में आने लगे। धीरे–धीरे आश्रम का विस्तार हुआ। इसी दौरान कनखल (हरिद्वार) में भी एक स्थान खरीद कर निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया जिसे आप सब 'निर्मल बाग' के नाम से जानते हैं। इसी प्रकार आप जी ने काशी में भी एक स्थान खरीदा ताकि गुरु–घर के विद्यार्थी वहां रहकर विद्या ग्रहण कर सकें।

निर्मल आश्रम ऋषिकेश के इतिहास में महंत बुड्ढ़ा सिंह जी का योगदान सर्वाधिक स्वीकारा जाता है। इनके समान परम श्रद्धालु व्यक्तित्व अन्यत्र सुलभ नहीं, जिन्होने अपना 1937 तक का समूचा जीवन ही गुरुवाणी एवं गुरुमत के लिये समर्पित कर दिया हो। सिंध प्रांत तो आपका दीवाना था। सहस्रों प्राणी आप से नाम–अमृत पीकर आत्म कल्याण के स्वर्णपथ पर चलकर मानव जीवन सफल कर गये। हज़ारों ने मिथ्या भाषण, व्यापार में ठगी, शराब आदि दुर्गुणों को छोड़कर सत्यधर्म का व्रत लिया।

स्वामी विवेकानंद ने एक बार कहा था कि एक आश्रम या मठ के लिये तीन चीज़े आवश्यक हैं। यदि इनका ध्यान रखा जाये तो वह आश्रम या मठ एक विराट् संस्था के रूप में परिणत हो जायेगा। वे हैं–

1. विद्या के अभाव से धार्मिक सम्प्रदाय की अवस्था शोचनीय हो जाती है, अतएव विद्या की चर्चा सदा चलाई जानी चाहिये।

2. त्याग और तपस्या के अभाव में विलासिता सम्प्रदाय को निगल जाती है, इसलिय त्याग और तपस्या के भाव को सदा उज्ज्वल रखना चाहिये।

3. प्रचार कार्य के कारण सम्प्रदाय की जीवन–शक्ति बलवती बनी रहती है, इसलिये कभी प्रचार कार्य से विरत नहीं होना चाहिये।

स्वामी विवेकानंद द्वारा कथित पहले दो गुण तो निर्मल सम्प्रदाय को विरासत में ही मिले हैं और यह कहना अनुचित न होगा कि महंत बुड्ढ़ा सिंह जी ने विद्या–प्रेम, त्याग और तपस्या की जो ज्योति जलाई उस परम्परा को महंत आत्मा सिंह, महंत नारायण सिंह, ब्रह्मज्ञानी संत निक्का सिंह जी विरक्त, संत भगत सिंह जी महाराज, संत गोपाल सिंह जी महाराज, संत दर्शन सिंह महाराज आदि का उस को बढ़ाने में बहुत बड़ा योगदान है।

निर्मल आश्रम के वर्तमान गद्दी नशीन पूज्य श्रीमान् 108 महंत बाबा राम सिंह जी महाराज इन्हीं महापुरुषों की देन हैं। परम पूज्य ब्रह्मज्ञानी संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज की कृपा के पात्र तथा पूज्य महंत नारायण

सिंह महाराज के नादी वंशज उत्तराधिकारी हैं। ब्रह्मज्ञानी संत निक्का सिंह जी विरक्त और महंत बाबा राम सिंह जी एक ही जीवन के दो अंग हैं। वे एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। विरक्त महाराज जी यदि कविता हैं तो महंत बाबा राम सिंह उनकी व्याख्या हैं। वस्तुतः उनके लिये कोई विशेषण है तो वह है जीवन्मुक्त।

''जीवन्मुक्त वह है जो जीवित ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वह सुख–दुःख के कारण अहंकार से छूट जाता है। उसमें भेद–दृष्टि मिट जाती है और सर्वात्मभाव आ जाता है। वह आसक्तिहीन होकर निर्हेतुक कर्म करता है। केवल निर्हेतुक कर्मों का ही मुक्ति से सामंजस्य हो सकता है। आसक्त कर्मों में 'द्वित्व' की स्थिति रहती है, इसलिए अद्वय–भाव, जो मुक्ति की अनिवार्य दशा है, की प्राप्ति आसक्ति के रहते हुए असम्भव है। जीवन्मुक्त कर्म–परिधि से बाहर रहता है।'' जीवनमुक्त के तो समस्त कार्य प्रकृति स्वयं करती है। वह तो पुरुष की भांति सब कुछ करते हुए उससे असंग ही रहता है।

महापुरुष (संत बाबा निक्का सिंह विरक्त) सब कुछ जानते थे। उन्होंने महंत बाबा राम सिंह जी महाराज को संत सजाने के कुछ समय पश्चात् ही विरक्त महाराज जी ने संत जोध सिंह जी महाराज को अनेक आशीर्वाद देकर महंत बाबा राम सिंह जी के साथ सेवा करने के लिये निर्मल आश्रम ऋषिकेश जाने की आज्ञा दी।

पूज्य महंत बाबा राम सिंह महाराज प्रायः गुरुमत प्रचार–प्रसार एवं मानव कल्याणार्थ देश–प्रदेश की संगतों में विचरते रहते हैं। संत बाबा जोध सिंह उनके मार्गदर्शन में, समय के साथ–साथ बढ़ती जिम्मेदारियों को आप जी गुरु कृपा द्वारा बड़ी सूझ–बूझ तथा दूर–दृष्टि के साथ निभाते हैं। निर्मल आश्रम की सारी सेवा–संस्थाओं (निर्मल आश्रम अस्पताल, हरि कृपा सिलाई केन्द्र आदि इसके साथ साथ करनाल स्थित सेवा कार्यों की देखभाल का उत्तरदायित्व भी उन पर है) का हर समय हर पक्ष से मार्गदर्शन, देख–रेख तथा प्रबंध करते हैं अर्थात आश्रम की हर गतिविधि आप जी के इर्द–गिर्द घूम रही है। इसके अतिरिक्त नई इमारतों

का निर्माण, पुरानी इमारतों, संप्रदाय के इतिहास की जानकारी इकट्ठा करना आदि सेवाओं को बड़ी लगन तथा कुशलता से निभा रहे हैं। यही कारण है कि आज निर्मल आश्रम केवल एक धार्मिक स्थान ही नहीं बल्कि उत्तरांचल प्रांत का एक विशाल सामाजिक सेवा संस्थान बन चुका है।

जैसे अंग्रेज़ी साहित्य में दोनों मित्रों (वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज) के सहयोग से सन् 1798 में 'लिरिकल बैलेड्स' नामक काव्य संग्रह के प्रकाशित होने से काव्य के क्षेत्र में जो एक नया काव्य आंदोलन उठ खड़ा हुआ था कुछ ऐसा ही निर्मल आश्रम को ऊँचाइयों तक ले जाने में इन दो महापुरुषों का हाथ है। दोनों मानों सांख्य दर्शन के पुरुष एवं प्रकृति हों। (सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति दो शक्तियां स्वीकार की गई हैं। पुरुष उदासीन है, प्रकृति सक्रिय जो अपने तीनों गुणों से निष्क्रिय उदासीन पुरुष को लीलामय बनाती है)

निर्मल आश्रम ऋषिकेश
समाज को योगदान

भारत की अपनी एक सभ्यता है। उसके पीछे हज़ारों वर्षों का इतिहास है। वेद, उपनिषद्, गीता, गुरुवाणी आदि के द्वारा यहां एक सद्विचार की अक्षुण्ण परम्परा चलती रही है। उसने हमारे वातावरण में एकता की भावना उत्पन्न की है। हम उन्हीं विचारों का सम्बल पाकर आज भी गाते हैं–

न को वैरी नहीं बिगाना
सगल संगि हम कउ बन आई

गुरु ग्रन्थ साहिब पृ0 1299

अर्थात् अब हमारा कोई बैरी या बेगाना नहीं रह गया है। अब हमारी सबसे बनने लगी है

निःसंदेह निर्मल आश्रम ऋषिकेश ने इस परम्परा में अपना योगदान दिया।

1. अध्यात्म के क्षेत्र में–निर्मल सम्प्रदाय गुरुमत के अनुयायी विद्वानों का एक वर्ग है। अध्ययन–अध्यापन तो इनका विशेष कर्म रहा है। जीवन के उपरोक्त परम उद्देश्य एवं आदर्श को सन्मुख रखकर आश्रम के समस्त क्रिया कलाप चलते हैं। ब्रह्म मुहूर्त से लेकर देर रात तक परोक्ष–अपरोक्ष तत्त्व ज्ञान चलता रहता है। गुरुवाणी का पाठ निरंतर प्रवाहमान रहता है। प्रातः शब्द–कीर्तन एवं आरती के पश्चात् सन्तों व दीन दुःखियों पर पुष्प वर्षा करने के उपरान्त उनके लिये अन्न क्षेत्र की व्यवस्था है, जिसमें लगभग 700 प्राणी भोजन ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् संगत नाश्ता (लंगर) ग्रहण करती है। इसी प्रकार दोपहर को भी लंगर की व्यवस्था रहती है। सायं गुरुवाणी, योग वाशिष्ठ, भगवद्गीता, उपनिषद् आदि का पठन–पाठन होता है। महाराज महंत बाबा राम सिंह जी की उपस्थिति इसको और भी रुचिकर बना देती है। महाराज जी की अलौकिक वाणी से जो धारा प्रवाहित होती है वह मरुस्थल में सुखद झरनों की मधुर फुहार बरसाती है। इसी प्रकार रात्रि के लंगर के पश्चात् पुनः एक बार सत्संग का समायोजन होता है जिसमें

शब्द कीर्तन, कथा आदि का प्रवाह अनवरत चलता है। निर्मल आश्रम ऋषिकेश की ओर से समय–समय पर धार्मिक उत्सवों का भव्य आयोजन किया जाता है। ये समारोह भिन्न–भिन्न स्थानों पर निर्धारित समयानुसार आयोजित किए जाते हैं।

मुख्यतः निर्मल बाग कनखल एवं निर्मल आश्रम ऋषिकेश में सितम्बर–अक्तूबर मास में पूर्व महापुरुषों की पवित्र याद में बरसी समागम आयोजित किए जाते हैं जिनमें 51 श्री अखण्ड पाठ साहिब के साथ–साथ निरन्तर शब्द–कीर्तन, सन्त समागम एवं लंगर का प्रवाह चलता है। सेवा–सिमरन के इस महान् यज्ञ में देश–विदेश से हज़ारों श्रद्धालुगण बड़ी श्रद्धा प्रेम से आकर पूज्य महापुरुषों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। नववर्ष के शुभारम्भ पर भी ऋषिकेश में अस्पताल व स्कूल का स्थापना दिवस आयोजित किया जाता है जिसमें हर साल की पूर्व संध्या पर अर्धरात्रि को श्री अखण्ड पाठ साहिब के भोग उपरान्त पूर्णतः धार्मिक वातावरण में शब्द–कीर्तन, प्रवचन एवं आरती के पश्चात् नववर्ष के मंगलमयी होने हेतु गुरुचरणों में अरदास की जाती है। इसके उपरान्त श्री महाराज जी उपस्थित श्रद्धालुओं को भविष्य में भी सेवा, सिमरन, सत्संग व शुभ कर्मों से जुड़े रहने का शुभाशीर्वाद देकर कृतार्थ करते हैं।

जिज्ञासुओं की अध्यात्म–पिपासा को शान्त करने के लिये निर्मल आश्रम द्वारा संतों, महापुरुषों के अमृतमयी वचनों को प्रकाशित करने का प्रयत्न निरंतर जारी है। ब्रह्मलीन महंत बुड्ढ़ा सिंह जी महाराज के कुछ प्रवचनों को सिंधी सेवकों द्वारा पहले–पहल सिंधी भाषा में छपवाया गया था जिसका पहला शीर्षक 'गुरमुख–मनमुख के लक्षण तथा निर्मल उपदेश' था। **अब यह पुस्तक 'निर्मल उपदेश' के नाम से पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है।** श्रीमान् संत बाब निक्का सिंह जी महाराज के प्रवचनों को कुछ श्रद्धालुओं ने रिकार्ड किया हुआ था। इन जीवन–उपयोगी, अनमोल प्रवचनों का संकलन 'सहज कथा' पुस्तक के रूप में पंजाबी तथा हिन्दी भाषा में उपलब्ध है। इसके उपरांत महंत बाबा राम सिंह जी महाराज की प्रेरणा से 'असचरज वस्तु' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ जिसमें

निर्मल संप्रदाय, (ठाकुरां) के संक्षिप्त इतिहास के अतिरिक्त आश्रम से संबंधित महापुरुषों के परोपकारी जीवन विस्तार पूर्वक लिखे गये हैं। यह पुस्तक न केवल आश्रम की बल्कि समूचे निर्मल संप्रदाय की अनमोल पूंजी है।

पूज्य 'विरक्त' संत बाबा निक्का सिंह महाराज जी के प्रवचनों से उच्च जीवन के आधारभूत विचारों को चुन कर एक पुस्तक 'पर्लज़ ऑफ ट्रूथ' अंग्रेज़ी में प्रकाशित की गई है। सूक्ष्म, दार्शनिक विचारों को सरल भाषा में प्रस्तुत करना, इस पुस्तक की विशेषता है। निर्मल संत वाणी की इन पुस्तकों को जिज्ञासु–जन निर्मल आश्रम, ऋषिकेश से प्रसाद रूप में प्राप्त करते हैं।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त, श्रद्धालुओं के आग्रह पर, महंत बाबा राम सिंह जी महाराज के अमृत वचनों की कैसेट्स व सी. डी. भी उपलब्ध हैं।

2. **शिक्षा के क्षेत्र में योगदान–** निर्मल सम्प्रदाय के सम्बन्ध में उसके आरम्भ को लेकर सिक्ख इतिहासकारों में भले ही मतभेद रहा हो लेकिन एक बात पर सभी विद्वान सहमत हैं कि यह सम्प्रदाय गुरुमत के अनुयायी विद्वानों का ही वर्ग है। गुरुवाणी का प्रचार–प्रसार करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। निर्मल संतों को गुरुमत के धर्मवेत्ता कहा जा सकता है। ये वही लोग हैं जिनको गुरुगोबिन्द सिंह जी ने संस्कृत–विद्या का अध्ययन करने के लिये बनारस भेजा था। अतः आरम्भ से ही निर्मल संतों का विद्या से गहरा सम्बन्ध रहा है। चारों वेद, 108 उपनिषद्, षट्शास्त्र, अठारह पुराण आदि का पठन–पाठन करना और तीर्थ स्थानों पर पहुँच कर देश–वासियों में गुरुमत का प्रचार करना निर्मल साधुओं के जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा है। यही कारण है कि सिंध, कराची आदि के बहुत से सहजधारी सिक्ख, गुरुघर से जुड़े रहे हैं।

निर्मल संत विद्यालयों के माध्यम से, साहित्य सृजन के माध्यम से इस सेवा कार्य में जुटे रहे हैं। ऋषिकेश में ही नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिये दो विद्यालयों की स्थापना की गई। एक निर्मल आश्रम दीपमाला पगरानी पब्लिक स्कूल एवं दूसरा निर्मल आश्रम ज्ञानदान अकादमी। पहला स्कूल यदि कम फीस पर उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान कर रहा है तो दूसरा

स्कूल निर्धन बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान कर रहा है।

दोनों स्कूलों के सुचारु प्रबन्धन के लिये संत बाबा जोध सिंह जी महाराज का मार्गदर्शन सदैव प्राप्त रहता है। इस समय इसमें 2000 विद्यार्थी इसका लाभ उठा रहे हैं।

3. **चिकित्सा के क्षेत्र में योगदान –** महाकवि कालिदास ने 'कुमार सम्भव' महाकाव्य के पंचम् सर्ग तपस्चर्या प्रकरण में कहा है 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् शरीर ही धर्म का प्रथम और उत्कृष्ट साधन है। शास्त्र का आदेश है कि जैसे नगर का स्वामी नगर की रक्षा में और सारथी रथ की रक्षा में तत्पर रहता है, वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह शरीर की रक्षा के कार्यो में तत्पर रहे यथा

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्व वहितो भवेत्।

स्वस्थ शरीर ही सिमरन, चिंतन–मनन, निदिध्यासन आदि करने में समर्थ होता है।

निर्मल आश्रम ऋषिकेश इस क्षेत्र में कैसे पीछे रह सकता था? इसी उद्देश्य को मुख्य रखकर 'निर्मल आश्रम अस्पताल और 'निर्मल मिशन फार विज़न' की स्थापना की गई। जहां निर्मल आश्रम अस्पताल में हर प्रकार के रोगों की जांच की जाती है। वहां आँखों के अस्पताल में आँखों के हर प्रकार के रोगों की जांच एवं दृष्टिहीन प्राणियों को दृष्टि देने की सेवा निःशुल्क की जाती है।

4. **जैसा चिंतन–वैसा आचरण–** शास्त्र ग्रन्थ पढ़कर जो संस्कार मन पर नहीं होता वह अधिकारी पुरुष का आचरण देखने से अनायास हो जाता है। धर्म वह है जो संतों के जीवन में दिखलायी पड़ता है।

निर्मल सम्प्रदाय के महात्माओं के जीवन भी बहुत ऊँचे हैं। ये वेदांत और गुरुवाणी के विशिष्ट विद्वान भी हैं। इनके उच्च और संयत जीवन, शास्त्र और गुरुवाणी का गम्भीर ज्ञान, कोमल स्वभाव, निर्मल विचारधारा और अमृत वचनों से मोहित हुई खिंची चली आती है। इस आश्रम में श्रद्धालुओं को आध्यात्मिक विचार एवं प्रभु भक्ति की प्रेरणा मिलती है।

निर्मल आश्रम की शाखायें

विगत कुछ समय से निर्मल आश्रम ऋषिकेश की सीमायें विस्तृत होती जा रही हैं। ये सभी स्थान श्रद्धालुओं के विशेष आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं– इनमे ंकुछ महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं–

निर्मल बाग कनखल (हरिद्वार)

निर्मल बाग प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर एक रमणीक स्थान है। श्री दरबार साहिब भवन में मर्यादा अनुसार सुबह–शाम नित्य–नियम के पश्चात् आरती तथा अरदास होती है। श्रद्धालुओं के लिए रहने की सुविधा, गोशाला तथा लंगर का अच्छा प्रबन्ध है।

आश्रम के नित्य प्रति कामों की सेवा संभाल, लंगर का प्रबन्ध तथा दरबार साहिब की सेवा का काम वेदांताचार्य महाराज श्री संत भरत सिंह जी बड़ी कुशलता के साथ निभा रहे हैं।

निर्मल कुटिया, करनाल (हरियाणा)

यह महान् पवित्र स्थान ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मलीन श्रीमान् 108 संत बाबा निक्का सिंह 'विरक्त' जी की तपो–भूमि है। देश के बंटवारे के बाद पूज्य महाराज जी की इस नगर की संगत पर विशेष कृपा रही। यहां ठहर कर आपने जप, तप, विद्या तथा ज्ञान से भरपूर जीवन के द्वारा सत्संग का निरंतर प्रवाह चलाया। इस महान् धार्मिक तप–स्थान की महानता, बाहरी दर्शन–मात्र से ही प्रकट हो जाती है। यह पवित्र स्थान श्रद्धालुओं की नित्य प्रति सेवा तथा सिमरन का केन्द्र है। संगत प्रातः से देर रात्रि तक निष्काम सेवा, सिमरन तथा सत्संग द्वारा अपना जीवन सफल करती है। पूज्य महंत बाबा राम सिंह जी की प्रेरणा तथा आशीर्वाद से हर समुदाय के लोग विशेषतः नई पीढ़ी, गुरुवाणी का शिक्षण लेते हैं। हर रविवार को सायं के समय 'विशेष गुरुवाणी कीर्तन' होता है। गुरु का लंगर 24 घंटे अटूट बांटा जाता है। 'विरक्त' महाराज जी के पवित्र कर–कमलों तथा आशीर्वाद से स्थापित

किये 'नानक दरबार' में देश–विदेश से संगत, बड़ी श्रद्धा तथा प्रेम के साथ आकर अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये अरदास करती है। महंत बाबा राम सिंह जी महाराज, समय–समय पर यहाँ आकर श्रद्धालुओं को आशीर्वाद तथा सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते है। सारे पाठी साहिबान निष्काम सेवा करते हैं। बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं के लिये निवास का समुचित प्रबंध है। पहले इसकी सेवा संभाल भगत लभामल जी करते थे। उनके देहावासन के पश्चात् राम सिंह जी ने इसकी विभिन्न सेवाओं को 40 सेवकों में बांट दिया है जिसे सब बड़ी कुशलता एवं सुचारु रूप से संभाल रहे हैं।

निर्मल बाग, करनाल– निर्मल कुटिया से दो किलोमीटर की दूरी पर 'निर्मल बाग' की जमीन पर गौशाला है जहाँ विदेशी नस्ल की गायों की आधुनिक ढंग से सेवा संभाल की जाती है। इसी जगह पर पशुओं के लिये चारा उत्पादन के अतिरिक्त कई प्रकार के फलदार पेड़–पौधे हैं जो इस स्थान की शान तथा रौनक बढ़ाते हैं।

संत निक्का सिंह चैरिटेबल हास्पिटल–शिव कालोनी करनाल–स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं को जन साधारण तक पहुँचाने के लिये शिव कालोनी करनाल में एक अस्पताल का निर्माण हो चुका है।

निर्मल धाम करनाल

मॉडल टाउन करनाल स्थित 'निर्मल धाम' संत अमरीक देव जी के सपनों का साकार रूप है। इस समय इसमें निम्नलिखित सेवा कार्य चल रहे हैं। सभी सेवायें पूर्णतः निःशुल्क हैं।

1. **संत निक्का सिंह पब्लिक स्कूल मॉडल टाउन**
2. **संत निक्का सिंह पब्लिक स्कूल सदर बाज़ार**
3. **संत निक्का सिंह पब्लिक स्कूल जरीफ़ा फार्म**
4. **भगत लभामल वृद्ध आश्रम**
5. **संत निक्का सिंह वोकेशनल ट्रेनिंग सेंटर**
6. **बाल कल्याण निकेतन**

संत अमरीक देव जी का यह सौभाग्य ही था कि उन्हें ब्रह्मज्ञानी संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज जैसे महापुरुष का सत्संग प्राप्त हुआ। यह उन्हीं की प्रेरणा थी कि वे – निर्मल धाम' जैसे महान् सेवा–ट्रस्ट की स्थापना कर सके।

आपका जन्म 20 अक्टूबर सन् 1934 को पश्चिमी पाकिस्तान के 'कीले' नामक एक गाँव में हुआ। भारत–पाक विभाजन के पश्चात् वे करनाल आ गये जहाँ जीविकोपार्जन के लिये उन्हें विकट संघर्ष करना पड़ा। लेकिन गुरुकृपा से शीघ्र ही उन के व्यवसाय में चार चाँद लग गये। भक्ति के संस्कार आपको अपने पूज्य पिता भगत लभामल और माता करतार कौर जी से प्राप्त हुये।

संत अमरीक देव जी ने लगभग एक दशक तक तन, मन, धन से इसकी अटूट सेवा की, 18 जुलाई 2008 को अपना सब कुछ निर्मल आश्रम ऋषिकेश के महंत बाबा राम सिंह जी के श्री चरणों में समर्पित कर दिया और अब वे उनके आज्ञानुसार सेवा का निर्वाह कर रहे हैं। इस समय इस आश्रम में 3800 विद्यार्थी, 200 वृद्ध, 40 अनाथ बच्चे, इसका लाभ उठा रहे हैं और 100 छात्रायें कंप्यूटर आदि का प्रशिक्षण ले रही हैं।

एक बात और––संत महात्माओं की वाणी पुस्तकों में पढ़ना एक बात है और उनका प्रत्यक्ष सत्संग करना, उनके मार्ग दर्शन में काम करना, प्रत्यक्ष उनका जीवन देखना अलग बात है।

मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मुझे उनके मार्गदर्शन में एक दशक से भी अधिक काम करने का सुअवसर मिला। मैंने देखा कि वे अत्यंत दयालु और दयावान हैं। यह उन्हीं की सेवा का परिणाम है कि आज निर्मल धाम ने एक वट वृक्ष का रूप धारण कर लिया है।

निर्मल संत निवास–वरसोवा मुंबई

भारत–पाक बंटवारे से बहुत समय पहले परम पूज्य महंत बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी ने सिंध प्रांत में गुरुवाणी तथा अन्य शास्त्रों की कथा द्वारा गुरुमत

का प्रचार–प्रसार किया। हैदराबाद, कराची, शिकारपुर तथा सक्खर के इलाकों में सिंधी समाज के हर वर्ग को गुरु–घर से जोड़ा तथा नाम की दात बख़शिश की। उस समय के सिंधी लोग, महाराज जी के अलौकिक दर्शनों से प्रभावित होकर, भारी गिनती में सेवक बनें। सन् 1947 ई0 में देश के बंटवारे के समय, लगभग सारा समाज अति–कष्ट झेलते हुये भारत में आकर बसा। मुंबई शहर में बसे हुये सिंधी प्रेमियों की श्रद्धा, उत्साह तथा बढ़ते प्रेम को देखकर परम पूज्य महंत बाबा राम सिंह जी ने सन् 1994 ई0 में वरसोवा (मुंबई) में 'निर्मल संत निवास' के नाम से गुरु–घर को आरम्भ किया। इस दरबार में नियमित रूप से गुरुवाणी पढ़ने–पढ़ाने की सेवा हो रही है। प्रत्येक रविवार को गुरुवाणी शब्द कीर्तन तथा लंगर का विशेष आयोजन किया जाता है। प्रतिवर्ष निर्धारित तिथि पर फरवरी में 'निर्मल संत निवास' का स्थापना दिवस मनाया जाता है। कार्तिक पूर्णिमा को श्री गुरु नानक देव जी महाराज का आगमन पर्व (प्रकाश उत्सव) तथा दिसम्बर/जनवरी महीने में श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज का आगमन दिवस बड़ी श्रद्धा से मनाया जाता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी महाराज के अखंड पाठों तथा सहज पाठों का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है। सिंधी तथा पंजाबी साध–संगत की अथक सेवा तथा अटूट श्रद्धा के साथ इस स्थान की शोभा निराली है। पूज्य महाराज जी के अनन्य सेवक, भाई भगवान सिंह जी, निवासी–गांव भोड़े (नजदीक नाभा) जिला पटियाला, पंजाब, इस पावन दरबार की सेवा– संभाल, बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से कर रहे हैं।

निर्मल आश्रम की अन्य शाखायें

सम्प्रति निर्मल आश्रम ऋषिकेश की लगभग 24 शाखायें हैं। इसमें से एक है – जन्म स्थान संत बाबा निक्का सिंह जी विरक्त जी के गांव 'सीहाँ दौद' जिला लुधियाना में। इसी प्रकार पटियाला, अम्बाला, होशियारपुर, संगरूर, देहरादून, काशी, फ़तहगढ़ साहिब, नवांशहर आदि में भी कई शाखायें सेवा–कार्यों में लगी हुई हैं।

निष्कर्ष :– जहां एक ओर निर्मल सम्प्रदाय से विभिन्न अखाड़े अपने अपने अखाड़ों तक सिमट गये हैं निर्मल आश्रम ऋषिकेश की सीमायें दिन–प्रतिदिन विस्तृत होती गई हैं। आज शिक्षा के क्षेत्र में अथवा चिकित्सा के क्षेत्र में उसने कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि सेवा भाव और आध्यात्मिक जागृति की उच्च परम्परा आज भी इनमें देखी जा सकती है। सैकड़ों सालों से सरस्वती देवी की उपासना में लीन रहने वाले निर्मलों के मन बदले नहीं हैं। आज भी इन संतो की सरलता, सादगी, त्याग, तपस्या, ज्ञानदान में कोई कमी नहीं आई।

निर्मल आश्रम ऋषिकेश निर्मल सम्प्रदाय का केन्द्रीय स्थान है। इसका प्रबन्ध ब्रह्मज्ञानी महंत बाबा राम सिंह जी के निर्देशन में होता है। मुझे उन्हें समीप से देखने का अवसर प्राप्त होता रहा है। आप विनम्रता, दयालुता और उदारता की मूर्ति हैं। एक ही पंक्ति में कहना हो तो आपका जीवन गुरुमत चिंतन के अनुरूप है। आप स्वतंत्र विचरण करते हुए बड़ा सादा और सरल जीवन व्यतीत करते हैं। हर प्रकार के जिज्ञासुओं के लिये आश्रम के दरवाज़े खुले हैं। ऊँच–नीच, भेद–भाव की भावना से ऊपर रहकर मिलने वाले श्रद्धालुओं को बड़े प्रेम और उत्साह से मिलते हैं। भ्रमों एवं अंधविश्वासों से ग्रसित अनेक व्यक्तियों को आप ने श्री गुरुग्रन्थ साहिब के श्री चरणों से जोड़ा है।

निर्मल आश्रम की विभूतियाँ

संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज

संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज निर्मल सम्प्रदाय की एक महान् विभूति हैं। आप निर्मल–आश्रम के संस्थापक महंत बुड्ढ़ा सिंह जी के शिष्य थे। अपनी सेवा कार्यों के लिये प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद आज यह आश्रम अपनी अलग पहचान बना चुका है। सम्प्रति महंत बाबा राम सिंह जी गद्दी पर विराजमान हैं।

संत बाबा निक्का सिंह जी का जन्म गाँव सीहाँ दौद जिला लुधियाना (पंजाब) में सन् 1894 ई0 के आस पास 'चहल' के जट परिवार में हुआ। बाल्यकाल इसी गाँव में व्यतीत हुआ फिर फौज में नौकरी की और सन् 1914 ई0 के प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया। गुरुवाणी की प्राथमिक शिक्षा इसी गाँव में रहते हुये उदासीन संतों से प्राप्त हुई। प्रबल पूर्व संस्कार उन्हें हरिद्वार खींच ले गये जहां महंत बाबा बुड्ढ़ा सिंह जी से इनका मिलाप हुआ। गुरु आदेश से कुछ समय बाद काशी में ब्रह्म विद्या हेतु प्रस्थान किया, जहां रहकर उन्होंने विद्या अध्ययन किया। लेकिन आप मात्र विद्वान नहीं होना चाहते थे अपितु जीवन के वास्तविक उपदेश अर्थात् परमपाद को प्राप्त करना चाहते थे। अतः इस बात को जानकर वापिस गुरुचरणों में पहुँचे और यहां रहकर उन्होंने जैसी साधना की वह बहुत कम साधकों में देखने को मिलती है।

करनाल निवासियों को पूज्य महाराज जी से मिलाने का श्रेय ब्रह्मज्ञानी संत बाबा भगत सिंह जी महाराज को है। पूज्य महाराज जी उन्हें शेखूपुरा (पाकिस्तान) में भी उनकी कुटिया में मिलने जाते थे। भारत–पाक विभाजन के पश्चात् जब संत भगत सिंह जी करनाल आ गये तो वे यहां भी उनसे मिलने आते थे। यहीं वजीरचंद कालोनी में करनाल संगत को उनके दर्शन एवं सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ। संत भगत सिंह जी महाराज, संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज को **'दो भुजाओं वाले विष्णु भगवान्'** कहा करते थे।

संत अमरीक देव जी ने अपनी एक बातचीत में मुझे बताया था कि एक बार मेरे मन में संकल्प उठा कि पूज्य महाराज जी जहाँ भी जाते हैं पैदल जाते हैं। उन्हें आने जाने में कष्ट होता होगा। क्यों न उनके लिये एक कार ले दूँ? मैंने ऐसा संकल्प कर एक कार खरीदी और ड्राइवर को साथ लेकर महाराज जी के पास पहुँच गया। उन दिनों महाराज जी एक गाँव में थे। चारपाई पर अकेले बैठे थे। मैंने जाकर नमस्कार किया। कुशलक्षेम पूछने के बाद महाराज जी ने पूछा ''लगता है कुछ सोच कर आये हो।'' मैंनें कहा–नहीं महाराज जी। ऐसा तो कुछ नहीं। बस मन में आया है कि आपको यात्रा में कष्ट होता है। कार लाया हूँ। ड्राइवर साथ है और यह कह कर मैंने कार की चाबी महाराज जी की मेज़ पर रख दी जो चारपाई के आगे पड़ी थी।

पूज्य महाराज जी तो गुस्से में आ गये और कहने लगे–हमनें गाड़ी का क्या करना है! कभी यह गाड़ी खराब हो जायेगी, कभी ड्राइवर कहीं चला जायेगा। हमें क्यों इस पचड़े में डालते हो। मैं लज्जित हो गया। बड़ी मुश्किल से मैं उठा और क्षमा मांगी।

पूज्य गुरुदेव सबकी मन की बात जान जाते थे। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि मानव शरीर के स्थूल आवरण को भेदकर उसके मानसिक चिंतन, बनावट तथा यहां तक कि उसकी चित्त वृत्तियों को भी देख लेती थी।

मंत्र दीक्षा लेने के कुछ समय बाद जब मैं (इन पंक्तियों का लेखक) जब उनसे मिला – तो महाराज जी ने मुझसे पूछा कि 'मंत्र जाप करते हो कि नहीं।' मैं तो करता था नहीं लेकिन डर के मारे कह दिया कि महाराज जी! करता हूँ। सुनकर महाराज जी बोले कि हमें कभी महसूस तो हुआ नहीं।' सच में वे अन्तर्यामी थे।

पूज्य महाराज जी निवृत्ति–परायण महात्मा थे। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। पूर्ण अनासक्त होते हुए भी वे कहते थे कि गुरुघर (निर्मल आश्रम ऋषिकेश) हमें बहुत प्यारा लगता है। करनाल निर्मल कुटिया के सम्बन्ध मे वे कहा करते थे कि यह मेरा हैड आफ़िस है।

लोक जीवन पर उन्होंने अमिट प्रभाव डाला जो आज भी बना हुआ है। बड़े बड़े कामों की अपेक्षा छोटी छोटी बातों में ही मनुष्य का स्वभाव

अधिक प्रतिबिम्बित होता है। दूर से आये हुये शिष्यों से सर्वप्रथम महाराज जी यही पूछते थे कहो भाई! कुशलता से तो हो? रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई? फिर कहते अच्छा जाओ– पहले लंगर छक लो। यदि कोई सेवक मिलने से रोक देता तो कहते– कि भाई! उसको मना मत करो! वह प्रेम से हमें मिलने आया हैं। मुझे तकलीफ देने की उसकी इच्छा नहीं है। यदि वे जानते कि इससे दूसरों को लाभ होगा तो उनसे मिलने के लिए कोई समय, असमय नहीं था।

पूज्य महाराज जी के एक शिष्य ने महाराज जी से प्रार्थना की कि एक दिन अपने श्री चरणों से हमारे घर को पवित्र करने की कृपा करें। महाराज जी ने अपनी स्वीकृति दे दी।

शिष्य ने पूछा – महाराज जी! प्रातः काल मैं कार लेकर आ जाऊँगाा और आप को ले जाऊँगा।

यह सुनकर महाराज जी ने पूछा – भाई। कार अपनी है?

शिष्य ने कहा – महाराज! अपनी तो नहीं, पड़ोसी से मांग कर ले आऊँगा।

यह सुनकर महाराज जी ने कहा कि आपके पास अपना क्या वाहन है।

तो शिष्य बोला – ट्रक है महाराज जी। यह सुनकर महाराज जी ने कहा तुम कार नहीं ट्रक ही ले आना। उसी पर चलेंगे।

एक बार जब संत भगत सिंह जी के शिष्य श्री लाल चंद मिड्ढ़ा जी ने महाराज जी को एक सूफ़ी कवि की ये पंक्तियां सुनाई–

'जिस ने खुद को खुदी से जुदा कर लिया
खुदा की कसम वह खुदा हो गया।'

ये पंक्तियां सुनकर महाराज जी झूमने लगे और उनसे बार–बार पढ़वाते रहे। यहाँ तक कि नीचे काम कर रहे लोगों को भी ऊपर बुलवाया और कहा कि लाल चंद, इनको भी सुनाओ। ऐसी थी उनकी गुण ग्राहकता।

ईश्वरीय आदेश के अनुसार 22 जुलाई 1983 को सायं 7 बजे के लगभग निर्मल कुटिया गोराया (पंजाब) में आप जी ने अपना पंचभौतिक शरीर त्याग दिया। ब्रह्मज्ञानी संत बाबा निक्का सिंह जी का आविर्भाव और तिरोभाव अब दोनों ही अतीत की घटनाये हैं परन्तु उनका जीवन एवं उनके आप्त वचन 'सहज कथा' (4 भागों में) के रूप में सुरक्षित हैं जो आज हमारा मार्ग दर्शन कर रही है।

संत बाबा भगत सिंह जी महाराज

बात सन् ९९५० की है। हरिद्वार में कुंभ का पर्व था। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू कुंभ पर पधारे थे। उनके साथ थे – श्वेत वस्त्रों में सुशोभित स्वामी गणेशदत्त जी महाराज। स्वामी जी प्रधानमंत्री को बता रहे थे कि सैंकड़ों वर्षों से बिना किसी निमंत्रण और एक–दूसरे से अपरिचित लाखों लोग दूर–दूर से खिंचकर निश्चित तिथियों में यहाँ एकत्रित हो जाते हैं। लम्बे समय तक यहाँ रहते हैं, संत दर्शन करते हैं, ज्ञान लाभ करते हैं, गंगा स्नान करते हैं और अपने स्थानों पर वापिस लौट जाते हैं। भारत की एकता और निरन्तरता को बनाए रखने में कुंभ के पर्व का महान योगदान है।

जवाहर लाल नेहरू का पश्चिमी साँचे में ढला मन–मस्तिष्क भी कुंभ के मेले की विशालता, पवित्रता एवं विविधता से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका। बोले – स्वामी जी! विभिन्न सम्प्रदायों एवं अखाड़ों के साधु–संन्यासियों की इस भीड़ को मैं देख रहा हूँ। इस हजूम में क्या आप मुझे ऐसे संत के दर्शन करवा सकते हैं जो प्राचीन ऋषि परम्परा की कड़ी हो। स्वामी जी का उत्तर था कि इसके लिये आपको सप्तऋषि आश्रम चलना होगा। प्रधानमंत्री जाने के लिये तैयार हो गये। देखते ही देखते कारों एवं जीपों का काफ़िला सप्त ऋषि आश्रम पहुँच गया।

जब प्रधानमंत्री वहाँ पहुँचे तो संत भगतसिंह जी महाराज नाम सिमरन में लीन बैठे थे। गोस्वामी जी ने परिचय करवाया। अभिवादन के बाद कुछ कहने के लिये उनसे प्रार्थना की। इस पर संत भगतसिंह जी ने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि बड़ी तपस्या और साधना की हो तो राज्य की प्राप्ति होती है और 'राज्यान्ते नरक प्राप्तिः' अर्थात राज्य समाप्ति पर नरक प्राप्ति होती है। (यदि राजा बनकर जनसेवा नहीं की तो)

संत चमनलाल जी ने बताया था कि संत भगत सिंह जी ने शुक्राचार्य, बृहस्पति एवं विदुर के नीति–शास्त्र का जिक्र करते हुये प्रधानमंत्री से पूछा था कि शास्त्रों में अनेक प्रकार की नीतियों का वर्णन है – जैसे धर्म नीति,

कुटिल नीति। युधिष्ठिर की नीति धर्म नीति थी, अंग्रेज़ों की नीति कुटिल नीति थी, आपकी नीति कौन सी है? तो प्रधानमंत्री केवल हँस दिये।

संत भगत सिंह जी का जन्म लगभग सन् 1880 ई. में गाँव तख्तहज़ारा जिला सरगोधा (पश्चिमी पाकिस्तान) में भगवान् देई–हरिचंद के घर में हुआ। यही वह गाँव है जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध कवि बुल्लेशाह ने कहा है कि:–

हाजी लोक मक्के नूँ जांदे
असां जाणा तख्त हज़ारे
जित वॅल यार उसी वल काबा
भावें फोल किताबां चारे

आपके पिता ठेकेदारी का काम देखते थे। किसी बात को लेकर उनका अपने छोटे भाई से मन–मुटाव हो गया। वे नाराज़ हो गये और संन्यासियों के एक आश्रम में चले गये। जाते हुए इनको भी साथ ले गये। इस प्रकार बाल्य काल से ही उन्हें संत महात्माओं के बीच रहने का सुअवसर मिला। यहीं उनके मन में संन्यास लेने की इच्छा पैदा हुई। लेकिन मठ के कुछ महात्माओं ने उनकी इस इच्छा का समर्थन नहीं किया और कुछ ने यह कहकर इसका विरोध किया कि सर्वप्रथम उन्हें घर जाकर अपने माता–पिता से आज्ञा लेनी चाहिये।

भगत सिंह आज्ञा लेने के लिये अपने गाँव पधारे। इस समय उनकी आयु २० वर्ष रही होगी। माँ का रूप धारण कर माया उपस्थित हुई। आँखों में अश्रु लिये माँ ने अपनी झोली फैलाई कि बेटे! तुम संन्यास ले लोगे तो हमारा वंश कैसे चलेगा। लेकिन शास्त्र के पठन–पाठन में समस्त जीवन बिता देना ही उनके हृदय की एकमात्र इच्छा थी, परन्तु माता के अत्यंत आग्रह के कारण उन्हें गुरुगृह से लौटकर गृहस्थ जीवन का आरम्भ करना पड़ा। लेकिन गार्हस्थ्य में रहते हुये उनकी वही दशा थी जो कविवर मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' में श्रीराम की थी – यथा

मैं वन जाकर हँसा किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी भरत मैं पाकर रोया।

उनके मन में बार–बार एक ही विचार गूँजता था कि हँस अपने मानसरोवर को भूल गया है। उनकी चंचू माया रूपी पंक में डूब गई है और आत्मा रूपी हँस के उजले पंख मैले हो गये हैं। आश्चर्य है कि हँस तो मानसरोवार के मुक्ता चुगता है, फिर वे कंकर चुगने क्यों बैठ गया? उनकी हालत कुछ इस तरह की हो सकती है –

हँस मानसर भूला
सनी पंक में चंचु
हो गये उजले पर मटमैले,
कंकर चुनने लगा वही जो
मुक्त चुगता पहले
क्षर में ऐसा क्या सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला?
कमल नाम से विछुड़
काँस के सूखे तिनके जोरे
अवगुंठित कलियों के धोखे
कुंठित शूल बटोरे
पर में क्या ऐसा आकर्षण
जो परमेश्वर भूला?

अंत में उन्होंने संन्यास लेने का निश्चय कर किया। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने लम्बी–लम्बी यात्रायें की। दक्षिण में रामेश्वरम् तक गये। उत्तर में अमरनाथ तक की यात्रा की। कहीं पैदल तो कहीं गाड़ी पर। कई विद्वानों के पास गये। उनसे वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। 'रामचरितमानस्' से उनका विशेष प्रेम था। अंत में वे शेखूपुरा (अब पाकिस्तान में) में अपनी कुटिया बनाकर रहने लगे।

सौभाग्यवश ठीक ऐसे समय पर जब वे भक्ति के चरमोत्कर्ष पर थे उनकी भेंट एक ब्रह्मवेत्ता, तत्त्वज्ञानी, विरक्त, उच्चकोटि के संत–साधु पुरुष से हुई और वे थे – संत स्वामी निक्का सिंह जी महाराज।

पंडित संत निक्का सिंह जी विरक्त का आना ऐसा था मानो सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त भूमि को शांत करने के लिए चन्द्र दौड़ आया हो। यह

अद्‌भुत मिलन ऐसा था मानों फरीद कबीर के पास आ गये हों अथवा विहार करते करते भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर से आ मिले हों।

हरिद्वार के अर्ध कुंभ (सन् ९९४४) के अवसर पर संत बाबा 'विरक्त जी' से मिलाप हुआ। दोनों महापुरुषों की यह मुलाकात सदैव का सम्बन्ध बन गई।

संत भगत सिंह जी ने 'विरक्त' महाराज से शेखूपुरा कुटिया में दर्शन देने के लिये निवेदन कर वहाँ पधारने का वचन ले लिया। अपने दिये वचनानुसार एक समय 'विरक्त जी' शेखूपुरा पहुँचे। **मिलाप की इस घटना का वर्णन निर्मल आश्रम ऋषिकेश द्धारा प्रकाशित 'असचरज वस्तु' नामक पुस्तक में 'भरत मिलाप' के शीर्षक के अन्तर्गत बहुत ही कलात्मक ढंग से किया गया है। (देखें पृ० २०३)**

भारत–पाक विभाजन के पश्चात् संत भगतसिंह जी महाराज करनाल (हरियाणा) में आ गये। यहाँ पर भी दोनों महापुरुषों का मिलाप होता रहा।

संत भगतसिंह वेदांत के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनकी जीवन कहानी, भारतीय दर्शन और साधना प्रणाली की जीवन्त कहानी है। वे अद्वैत वेदांत के साकार विग्रह थे। उनके एक शिष्य ने बताया था कि एक बार कुरुक्षेत्र सूर्य ग्रहण के पर्व पर वहाँ बैठे थे। एक व्यक्ति चीनी के खिलौने बेच रहा था। खिलौनें–कोई गाय, कृष्ण, राम आदि के थे। कोई खरीद नहीं रहा था। उससे पूछा तो उसने कारण बताया। कहने लगे लाओ हमें दो– सब को पानी में डाला और पी गये। कहने लगे – लोग तो नाम – रूप के फेर में पड़े हैं – तत्त्व तो एक ही है।

उन्होंने अपना समस्त जीवन आत्म साक्षात्कार के लिये समर्पित कर दिया था। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ भी किया, जो भी आंतरिक साधनायें की, उन सबका एक मात्र लक्ष्य था ब्रह्म की, अपने वास्तविक आत्मस्वरूप की प्रत्यक्षानुभूति।

'राम' मंत्र की मधुर ध्वनि आप जी की रसना से लगातार प्रवाहित होती थी। इस भक्ति का आश्रय ग्रहण करके, वे अपने इष्ट देव से एकाकार हो गये थे।

उस एक्य में वे आत्मा और परमात्मा के बीच एकता स्थापित कर ब्रह्मज्ञान की चरमावस्था पर पहुँच गये। श्री गुरु अर्जुन देव का महावाक् है कि

तीन बिआपहि जगत कउ तुरीआ पावै कोइ
नानक संत निरमल भए जिन मनि वसिआ सोइ।

संत भगत सिंह जी का जीवन गुरुवाणी के इस महावाक् की कसौटी पर खरा उतरता है। सन् ९९६२ ई. में कार्तिक पूर्णिमा को निर्मल कुटिया (वज़ीरचंद कालोनी) करनाल में आप जी ने अपना पंच भौतिक शरीर त्याग दिया।

आज भी उनकी पावन–स्मृति में उनके शिष्य श्री हंसराज जी अपने सहयोगियों के साथ प्रातः सायं गुरुमत एवं वेद्वांत चर्चा–परिचर्चा करते देखे जा सकते हैं। यह सत्संग गत पाँच दशकों से निरंतर जारी है। कार्तिक पूर्णिमा को उनकी पुण्य–तिथि बड़ी धूम–धाम से मनाई जाती है। जिस में ब्र ***ह्म*** ज्ञानी महंत बाबा रामसिंह जी स्वयं शिरकत करते हैं।

संत बाबा गोपाल सिंह जी महाराज

श्रीमान् 108 ब्रह्मज्ञानी संत भगत सिंह जी महाराज ने जो आध्यात्मिक विरासत छोड़ी थी उसको उनके सुपुत्र संत गोपाल सिंह जी ने और आगे बढ़ाया, भेद केवल यह रहा कि यदि संत भगत सिंह जी का झुकाव वेदांत और रामकथा की ओर अधिक था तो संत बाबा गोपाल सिंह जी का सम्पूर्ण झुकाव गुरुवाणी की ओर था। यह प्रेम उनका बाल्यकाल से ही था। पता नहीं वे ब्रह्मज्ञानी संत निक्का सिंह जी महाराज के सम्पर्क में कब आये लेकिन भारत–पाक विभाजन से पूर्व मैंने उन्हें बचपन में गाँव तख़त हज़ारा (पश्चिमी पाकिस्तान) में और लाहौर में गुरुसेवा में आते–जाते देखा है। लेखक को यद्यपि उनके साथ रहने का सुअवसर 10–12 वर्ष तक ही मिला लेकिन मैंने देखा वे प्रायः भाव–विभोर होकर गाते थे।

दरमादे ठाढ़े दरबार
तुझ बिनु सुरति करै को मेरी
दरसनु दीजै खोल्हि किवार

गु० ग्र० पृ० 856

गुरुवाणी के इस प्रेम को महाराज संत बाबा निक्का सिंह जी ने और भी दृढ़ कर दिया। मुझे स्मरण है कि जिस दिन संत बाबा गोपाल जी का देहावसान हुआ तो महाराज जी ने स्वयं अपने मुख से ये शब्द कई बार दोहराया है कि ले भाई! आज तो वाणी का जहाज डूब गया।

मूसा एक चरवाहा थे। उन्होंने पेड़ की हरी–हरी पत्तियों के बीच एक दहकती आग देखी थी और फिर उसे अपने भीतर उतार लिया था और फिर वे चरवाहे से पैगम्बर बन गये थे। संत गोपाल सिंह जी ने भी गुरुवाणी को अपने सच्चे दिल और पवित्र मन से कठोर तपस्या में लपेटकर जब प्रकट किया तो साधारण गो–पाल से तत्त्वज्ञ की पदवी पर प्रतिष्ठित हो सके।

इसके पश्चात् पंजाब, हरियाणा के अनेक नगरों एवं गाँवों में जाकर लोगों से सम्पर्क साधा और गुरुवाणी के शुद्ध उच्चारण की महिमा बतलाकर, पाठकों की गुरुवाणी के प्रति श्रद्धा दृढ़ कराई। संगत को अपने गुरु–चरणों से जोड़ा।

आप का जन्म गाँव तख़्त हज़ारा जिला सरगोधा (पश्चिमी पाकिस्तान) में लगभग 1908 में हुआ और वे 1976 में करनाल में अपने गुरु को स्मरण करते हुये ब्रह्मलीन हुये।

आज भी निर्मल कुटिया गोराया (जिला जालंधर) में प्रति वर्ष उनकी पुण्य तिथि मनाने का प्रचलन है जिसमें निर्मल आश्रम ऋषिकेश के महंत बाबा राम सिंह जी स्वयं शिरकत करते हैं।

एक बात और – विवाह पूर्व मेरे श्वसुर की इच्छा थी कि वे अपनी बेटी को उनका आशीर्वाद दिलवायें। महाराज उन दिनों गोराया आये हुये थे। मेरे श्वसुर अपनी बेटी के साथ उन्हें मिले। बातों ही बातों में उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? बेटी ने कहा कि महाराज जी मैं उषा हूँ। उन्होंने कहा बेटी यह तो तेरा नाम है। तुम्हारे शरीर का नाम। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है? हम तो यह पूछते हैं। अपने स्वरुप को जानना ही सच्चा धर्म है।

मेरी पत्नी उषा गुलाटी जिसका सम्बन्ध एक आर्य समाजी परिवार से है अब मुझे बताती है कि मैं उनकी बात को अब समझी हूँ कि वे क्या पूछते थे। वे तो साक्षी, द्रष्टा, चेतन की ओर इशारा करना चाहते थे। आज वह मन से निर्मल परिवार से जुड़ी है–शायद यह उनका ही प्रभाव है। हम दोनों को विरक्त शिरोमणि पूज्य महाराज संत निक्का सिंह जी से मंत्र–दीक्षा दिलवाना भी उनकी ही कृपा का परिणाम है।

आज भी उनके शिष्य आदर्श जी एवं सरदार जसबीर सिंह उनका नाम लेते ही भावुक हो उठते हैं।

संत गोपाल सिंह जी ने लगभग 40 वें साल में भगवे वस्त्र धारण किये। गृहत्याग किया तो फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। शरद ऋतु में गंगा में खड़े होकर पाठ करना, गर्मियों में गर्म रेत पर बैठकर गुरुवाणी पढ़ना, जंगल में एकांत बैठ जाना, आये गये को 'सत्नाम' का उपदेश देना। इस मर्यादा का उन्होंने अंत तक निर्वाह किया। बक़ौल इक़बाल–

हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

मंहत बाबा राम सिंह जी महाराज

श्रीमान् 108 ब्रह्मज्ञानी महंत बाबा राम सिंह जी के बारे में लिखना आकाश को क्रोड़ में भरने का दुस्साहस करने जैसा लगता है। फिर भी यदि मुझे कोई कहे कि कम से कम शब्दों में उनके सम्बन्ध में बतायें तो मैं कहूँगा–स्थितप्रज्ञ

'स्थितप्रज्ञ' गीता का आदर्श पुरुष विशेष है। यह शब्द गीता का अपना है। गीता के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में यह नहीं मिलता। गीता के दूसरे अध्याय के अंतिम 18 श्लोकों में इसका वर्णन है।

स्थितप्रज्ञ यानी स्थिर बुद्धिवाला मनुष्य। स्थितप्रज्ञ सारी इन्द्रियों को लगाम चढ़ाकर उन्हें कर्म योग में जोतता है। इन्द्रियों रूपी बैलों से वह निष्काम स्वधर्माचरण की खेती भली भाँति करा लेता है। अपनी प्रत्येक श्वासोच्छ्वास वह परमार्थ में खर्च करता रहता है।

यही हैं–महंत बाबा राम सिंह। आप का जन्म 17 अक्तूबर 1950 ई० को पिता श्री अरूड़चन्द उप्पल और माता श्रीमती बिमला देवी जी के घर दिल्ली में हुआ। पूज्या माता श्रीमती बिमला देवी महाराज संत भगत सिंह जी की शिष्या हैं। अतः भक्ति के संस्कार उन्हें घर से ही प्राप्त हुए।

बचपन से ही आपके जीवन का यह नियम बन गया था कि स्कूल से आकर विरक्त महाराज संत बाबा निक्का सिंह जी के चरणों में पहुँच जाना, नमस्कार करके लंगर की सेवा में जुट जाना। जब विरक्त महाराज जी करनाल से कहीं बाहर गये होते तो छोटी कुटिया जाकर–जो करनाल में घर के अत्यंत निकट है संत भगत सिंह जी की फोटो के सम्मुख तीन–तीन घंटे बैठे रहना। यह उनका स्वभाव ही बन गया था। सन् 1970 में जब वे कालेज में पढ़ते थे' तब तक यह कार्य अनवरत जारी रहा।

अध्ययन के पश्चात् जब उन्होंने पंजाब एण्ड सिंध बैंक (बरनाला) में नौकरी की तो स्थितप्रज्ञता के लक्षण और भी स्पष्ट हो गये। सीधे बैंक जाना, अपने काम से काम, और फिर शनिवार की रात्रि और रविवार को

महाराज जी के चरणों में व्यतीत करके सोमवार को ड्यूटी पर बैंक पहुँच जाना। समय मिलने पर पाठ करना–यह नियम ही बन गया।

एक बार ऋषिकेश में महाराज महंत बाबा राम सिंह जी ने मुझ से पूछा कि–आजकल ऐसे कौन से महापुरुष हैं जो अध्यात्म का शिखर पुरुष कहे जा सकते हैं। मैंने स्वामी विवेकानंद के गुरु स्वामी राम कृष्ण परमहंस, महर्षि अरविंद, जे.कृष्णामूर्ति, राधा स्वामी सत्संग के सद्गुरु महाराज चरण सिंह, ओशो रजनीश आदि कुछ महापुरुषों का नाम लिया और साथ में कहा कि महाराज जी ओशो रजनीश विवादस्पद हैं। कुछ लोग उन्हें भगवान् मानते हैं कुछ उनके विरोध में भी बोलते हैं। यह सुनकर महाराज जी ने कहा। कि बैंगन होता है न ! उसकी सब्जी बनानी हो तो जहां से खराब होता है उसे काटकर फैंक देते हैं बाकी की सब्जी बना लेते हैं। हमें तो उनके गुण देखने हैं– गोस्वामी तुलसी दास जी ने ठीक ही लिख है–

मधुकर सरिस संत गुनग्राही

(रामचरित मानस 1.10)

अर्थात् संत जन भौरों की भाँति गुण ही को ग्रहण करने वाले होते हैं। पूज्य महाराज जी भी ऐसे ही हैं। महंत बाबा राम सिंह देश–विदेश में भ्रमण कर गुरुवाणी, नाम सिमरन, सेवा का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। अनेक लोग उनके दर्शनों को आते हैं वे सभी को 'सत्नाम' का उपदेश देते हैं, सबको गुरुनानक देव के घर से जोड़ते हैं।

एक बात और –एक स्थितप्रज्ञ के जीवन में तीन भूमिकाएं रहती हैं–क्रियावस्था, भावावस्था एवं ज्ञानावस्था परन्तु इनमें से कभी पहली, कभी दूसरी, कभी तीसरी प्रधान रहती है। किसी एक अवस्था के प्रधानता के कारण बाह्य जीवन में फर्क दिखाई देता है लेकिन प्रधानता किसी भी अवस्था की हो तो भी उस आत्मज्ञान में कोई फर्क नहीं पड़ता। लोक संग्रह उसके आत्मज्ञान की बदौलत ही होता है। **संत विनोबा भावे का कहना है – कि स्थितप्रज्ञ को मूर्तिमान और एक छोटा सा ईश्वर ही समझिये।**

काफी समय पहले की बात है, पूज्य महाराज जी ने नीलोखेड़ी किसी उद्घाटन के लिये जाना था लेकिन वे पहले संत भगत सिंह जी की शिष्या

के घर पहुँच गये। श्रीमती वेदवती जी बाहर आई। महाराज जी का स्वागत किया। महाराज जी ने कहा कि भीतर तो तब आयेंगे पहले आप को संत भगत सिंह जी से जो कुछ मिला है उसे मेरी चिप्पी में डाल दो। इसे कहते हैं गुण ग्राहता।

उनके गुणों को शब्दों में तो बाँधा नहीं जा सकता। लेकिन गुरुवाणी के निम्न शब्दों में संकेत अवश्य किया जा सकता है।

साचि नामि मेरा मनु लागा
लोगन सिउ मेरा ठाठा बागा
बाहरि सूतु सगल सिउ मउला
अलिपतु रहउ जैसे जलमहि कउला

(गुरुग्रन्थ पृ0384)

अर्थात् हे भाई! मेरा मन सत्य स्वरूप परमात्मा के नाम में सदा जुड़ा रहता है, सांसारिक व्यक्तियों के साथ मेरा उतना ही व्यवहार है जितने व्यवहार की आवश्यकता पड़ती है। दुनिया के साथ व्यवहार के समय मैं सब के साथ प्रेम वाला सम्बन्ध रखता हूँ लेकिन निर्लिप्त रहता हूँ जिस प्रकार पानी में कमल फूल।

संत बाबा जोध सिंह जी महाराज

मशीन में दो प्रकार के यंत्र होते हैं – एक दिशा दिखाने वाला और दूसरा गति बढ़ाने वाला। जैसे पक्षी दो पंखों से उड़ता है और आँखों से देखता है वैसे ही मनुष्य भी दो शक्तियों से अग्रसर होकर आगे बढ़ता है। हम पाँव से चलते हैं और आँखों से देखते हैं।

निष्काम कर्म अथवा सेवा, गति बढ़ाने वाला तत्त्व है और 'विचार' हमारी आँख है। यह तीसरा नेत्र है जो हमें दिशा प्रदान करता है। सेवा से अथवा निष्काम कर्म से बाहरी आकार बढ़ता जाता है अतः विचार तत्त्व भी प्रज्वलित रहे–इसकी चिंता रहनी चाहिये।

यह हर्ष का विषय है कि संत बाबा जोध सिंह जी महाराज निर्मल आश्रम ऋषिकेश रूपी इस विशाल संस्था को गति एवं दिशा देने वाले दोनों तत्त्वों अर्थात् सेवा एवं विचार मंथन के द्वारा उसे आगे बढ़ाने में अपना योगदान दे रहे हैं।

एक ओर जहां वे निर्मल आश्रम ऋषिकेश द्वारा चलाई जा रही विभिन्न संस्थाओं की जैसे–निर्मल आश्रम हस्पताल, सिलाई केन्द्र, एन.डी.एस. स्कूल, ज्ञान दान अकादमी, आँखों का हस्पताल, मोबाइल हस्पताल आदि सेवा कार्यों की देख–रेख बड़ी सूझ बूझ एवं कुशलता से कर रहे हैं, वहां दूसरी ओर जिन विचारों की बुनियाद पर निर्मल सम्प्रदाय खड़ा है, उसका मंथन एवं मनन भी निरंतर करते आये हैं।

इतने बड़े सेवा कार्य को संभालना आसान नहीं है। गुरुवाक् है–

सतिगुरु की सेवा निरमली,
निरमल जन होइ सु सेवा घाले।

अर्थात् सत्गुरु की सेवा पवित्र (कार्य) है, जो मनुष्य शुद्ध होवे वही वह कठिन कार्य कर सकता है। दूसरी सेवा और भी कठिन है। रमण महर्षि, श्री अरविन्द, और जे.कृष्णामूर्ति जैसे आधुनिक आध्यात्मिक महापुरुषों ने

यही मत व्यक्त किया है कि इस युग की जो समस्या है, न तो आर्थिक या राजनैतिक है,अपितु वैचाारिक है।

'निर्मल सम्प्रदाय' जिस विचार तत्त्व पर खड़ा है वह मूलतः गुरुमत है। लेकिन उसमें किसी प्रकार की हठ धर्मिता नहीं। वह काफ़ी लचीला है और उसकी जड़े प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में बहुत दूर तक गई हैं।

यहां यह बताना आवश्यक है पूज्य संत बाबा जोध सिंह ने पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के परिसर में दिनांक 29, 30 अक्तूबर 2009 को दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन करवाया। विषय था 'निर्मल सम्प्रदाय' का समाज को अद्वितीय योगदान। इस सेमिनार में निर्मल सम्प्रदाय के इतिहास एवं विचारधारा पर खूब मंथन हुआ। इसके पश्चात् देहरादून में भी एक सेमिनार का आयोजन किया गया। कुछ समय पूर्व 2010 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में संत बाबा जोध जी ने अध्यक्षता भी की।

भविष्य के लिये यह एक अच्छा संकेत है। इस तत्त्व का रोज़–ब–रोज़ विकास होता रहना चाहिये। जिसमें नये नये शोध न हों, वह विद्या कुण्ठित हो जाती है।

आपका जन्म 14 अगस्त 1948 ई० को हुआ । सांसारिक विद्या प्राप्त करने के पश्चात् पंजाब एण्ड सिंध बैंक में नौकरी भी की लेकिन इनकी आध्यात्मिक रुचियों को देखकर संत बाबा निक्का सिंह जी ने 3 अप्रैल 1983 को संत वेश देकर इन्हें सांसारिक बंधनों से मुक्त कर दिया।

संत बाबा जोध सिंह दो महापुरुषों के विशेष कृपा भाजन रहे हैं – एक संत बाबा गोपाल सिंह और दूसरे – विरक्त शिरोमणि संत बाबा निक्का सिंह के । भले ही रिश्ते में आप संत बाबा निक्का सिंह जी के भतीजे लगते हैं लेकिन वस्तुतः तो वे संत गोपाल सिंह एवं संत बाबा निक्का सिंह जी के मानस पुत्र ही हैं ठीक वैसे ही जैसे विवेकानंद स्वामी रामकृष्ण परमहँस के मानस पुत्र।

आश्रम के दुर्लभ रत्नों में से वे एक हैं

निष्कर्ष

'निर्मल सम्प्रदाय' के इस संक्षिप्त अध्ययन से हमनें यह पाया है कि निर्मल सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव यों तो गुरुनानक देव जी के युग से ही हो गया था लेकिन उसका सम्प्रदाय के रूप में नामकरण और विधिवत् प्रवर्तन दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी के काल में ही हुआ।

संस्कृत, पंजाबी एवं हिन्दी तीनों भाषाओं में साहित्य सृजन के कारण भी इसका महत्त्व है, वैदिक, दार्शनिक एवं गुरुमत सम्बन्धी प्रचुर साहित्य का सृजन इन्होंने किया है।

लेकिन इस से भी महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्मल संत अपनी कथनी, रहनी और करनी के कारण निर्मले संत कहलाये। इन संतों में मन, वचन और कर्म में एक रूपता के दर्शन होते हैं।

हमने उन्हें समीप से जानकर यह पाया है कि निर्मल संतों ने अपनी भक्ति, अपने संयम, अपने त्याग एवं अपने ज्ञान की गम्भीरता तथा कठोर आध्यात्मिक साधना द्वारा पोषित अटल संकल्पशक्ति के बल पर अद्वैत वेदांत के लक्ष्य को सिद्ध कर दिखाया है। निर्मल संतों ने गुरुवाणी की व्याख्या के लिये ही वेद, उपनिषद्, षड् दर्शन, आदि ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया।

राजनीति से वे प्रायः निर्लेप रहे हैं। अपने डेरों में रहकर पूजा पाठ करना, ही इन के जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है। जनता द्वारा दी गई दान राशि का कभी भी उन्होंने दुरुपयोग नहीं किया। उसे केवल सेवा कार्यों में ही लगाया है, सादा जीवन व्यतीत करने में इन्हें प्रसन्नता होती है। विरक्त भाव से निवृत्ति मार्ग को अपनाकर जीवन यापन करना ही इनका लक्ष्य है। ऐसे ही संतों के लिये सर इक़बाल ने कितनी श्रद्धापूर्वक बात कही है

न पूछ इन खिरका पोशों की इरादत हो तो देख इनको
यदे–बैज़ा लिए बैठे हैं, अपनी आस्तीनों में

अर्थात् इन साधारण से दिखने वाले व्यक्तियों की कुछ मत पूछिए। बहुत पहुँचे हुए लोग हैं। यदि जानने की अभिलाषा है तो इन्हें श्रद्धापूर्वक समीप से देखिए। तब कहीं मालूम होगा कि इनमें कैसे–कैसे चमत्कार छिपे हैं''!